योगविद्या

वर्ष 8 अंक 9
सितम्बर 2019
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

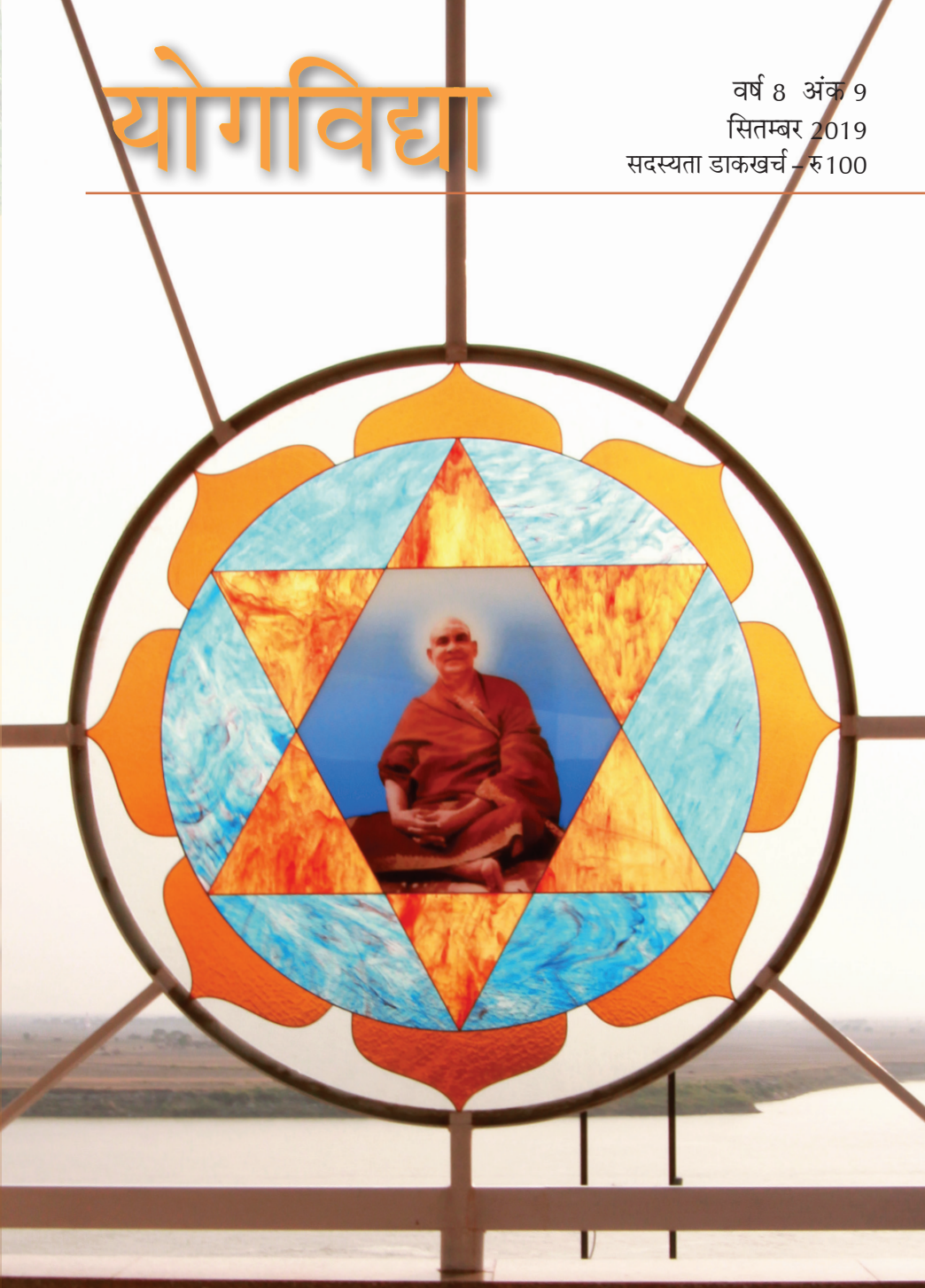

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2019

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी शिवानन्द यंत्र

अन्दर के रंगीन फोटो : बाल योग मित्र मण्डल योग प्रशिक्षण, पादुका दर्शन, मुंगेर 2019

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

थोड़ा-सा चिन्तन करो, थोड़ा-सा विचार करो

अपने विचारों का, अपने उद्देश्यों का विश्लेषण करो। स्वार्थ का निर्मूलन करो। वासनाओं को शांत करो। सभी की सेवा करो, सभी से प्रेम करो। अपने हृदय को शुद्ध और पवित्र बनाओ। अपने मन की सफाई करो। श्रवण और मनन करो। दैनिक आध्यात्मिक डायरी एक महत्त्वपूर्ण, अनिवार्य साधन है। इससे तुम्हारी आँखें खुलेंगी और मनन-शक्ति विकसित होगी। इसकी सहायता से तुम अपने सभी दुर्गुणों का उन्मूलन कर पाओगे तथा अपनी साधना में नियमित हो पाओगे।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

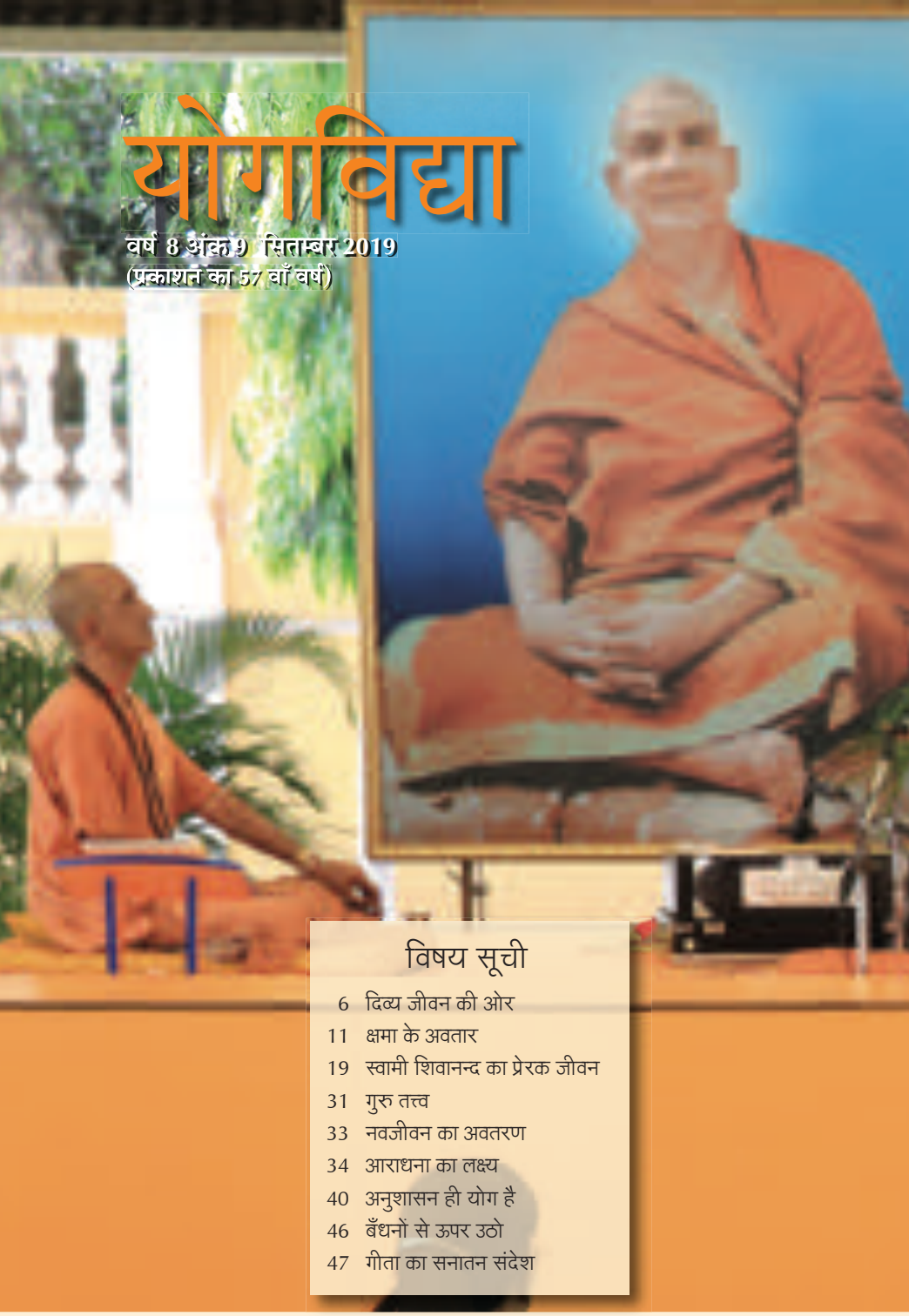

योगविद्या

वर्ष 8 अंक 9 सितम्बर 2019
(प्रकाशन का 57 वाँ वर्ष)

विषय सूची

6 दिव्य जीवन की ओर
11 क्षमा के अवतार
19 स्वामी शिवानन्द का प्रेरक जीवन
31 गुरु तत्त्व
33 नवजीवन का अवतरण
34 आराधना का लक्ष्य
40 अनुशासन ही योग है
46 बँधनों से ऊपर उठो
47 गीता का सनातन संदेश

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

बिहार योग विद्यालय को

प्रधान मंत्री पुरस्कार 2019

योग के उन्नयन एवं विकास में उत्कृष्ट योगदान हेतु

आत्मस्वरूप,
हरि: ॐ!

21 जून 2019 को योग के उन्नयन एवं विकास हेतु उत्कृष्ट योगदान के लिये राष्ट्रीय संस्थागत श्रेणी में प्रधान मंत्री पुरस्कार के लिये बिहार योग विद्यालय का चयन किया गया। बिहार योग विद्यालय के कार्यों की मान्यता के रूप में प्रदत्त इस पुरस्कार की सूचना आप सब को देते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

यह पुरस्कार यद्यपि बिहार योग विद्यालय को मिला है, इसके वास्तविक अधिकारी तो श्री स्वामी शिवानन्द जी तथा श्री स्वामी सत्यानन्द जी ही हैं। वे ऐसे युगद्रष्टा मनीषी थे जिन्होंने भावी समाज में योग की अहम भूमिका को पहचानकर इसे चरितार्थ करने हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। स्वामी सत्यानन्द जी ने पचास वर्ष पूर्व मुंगेर में योग विद्या का जो बीजारोपण किया था, आज उसकी लहलहाती फसल से दुनियाभर में हजारों-लाखों लोगों का आध्यात्मिक सम्पोषण हो रहा है।

इस पुरस्कार को अपने गुरुओं की ओर से विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हुए, आपके द्वारा अनेक वर्षों से की गई योग-सेवा के लिये आपके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी ने योग का बीज बोया, किन्तु आपकी प्रतिबद्धता, उत्साह एवं पुरुषार्थ ने ही उसका अभिसिंचन, सम्पोषण एवं संरक्षण किया है। आपके दीर्घकालीन परिश्रम और समर्पण ने श्री स्वामीजी के यौगिक संकल्प को साकार किया है, न केवल आपके जीवन में, बल्कि उन अनगिनत विद्यार्थियों एवं साधकों के जीवन में भी जिन्हें आप प्रेरित कर पाए हैं।

भारत के समस्त राज्यों तथा सम्पूर्ण विश्व में फैले सत्यानन्द योग परिवार के सदस्य श्री स्वामीजी के बृहत् यौगिक संकल्प के प्रति कटिबद्ध हैं, एकजुट हैं। बिहार योग विद्यालय आप सब के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

नई पीढ़ी के सदस्यों से भी हम आशा और प्रार्थना करते हैं कि आप इस महान् विद्या का उसी प्रकार सम्मान एवं सम्पोषण करेंगे जैसे आपके पूर्व की पीढ़ियों ने किया। अपने गुरुओं के योग मिशन की सफलता के लिये एक साथ मिल कर काम करें। अपने पुरुषार्थ और लगन से योग विद्या के बीज का सिंचन करें। प्रेरणा और प्रेम के प्रकाश में वे बढ़ेंगे, पल्लवित-पुष्पित-फलित होंगे। संयम और समर्पण से उन फलों का संचय करें ताकि आपके पास आने वाले सभी लोग लाभान्वित हो सकें।

स्वामी निरंजन

दिव्य जीवन की ओर

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रत्येक सूर्योदय के साथ जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करो। प्रत्येक दिन एक नूतन प्रारम्भ होता है। बीती गलतियों एवं विफलताओं को भूलो। नवीन विजयी जीवन में प्रवेश करो।

प्रात:काल भगवान का नाम लेते हुए बिस्तर से उठो, दिनभर उनका नाम लेते हुए काम करो और रात को उनका नाम लेकर ही विश्राम करो। अपनी जीवन-नैया को इस तरह खेओ कि उसकी दिशादर्शक सुई हमेशा ईश्वर की तरफ रहे। ईश्वर में श्रद्धा रखने से साधक का साधनापथ उज्ज्वल बनता है।

आध्यात्मिक प्रगति एकाएक चमत्कार की तरह प्राप्त नहीं की जा सकती। आध्यात्मिक जीवन का सृजन तथा पालन एक स्पष्ट सुविदित आदर्श, निश्चित कार्यक्रम तथा एक विशिष्ट विचार की पृष्ठभूमि में ही होना चाहिए। सतत् अभ्यास तथा आध्यात्मिक साधनाओं के बिना तुम जीवन में सफलता की आशा नहीं कर सकते।

साधना जीवनभर की जानी चाहिए। तुम्हारा प्रत्येक दिन, प्रत्येक प्रहर और प्रत्येक क्षण साधनामय रहे। इस पथ में हजारों कठिनाइयों के बावजूद तुम आगे बढ़ो। हर कदम पर ईश्वर को अपना पथ-प्रदर्शक मानो। तब कोई कारण नहीं कि तुम विघ्नों में उलझे रहो या भवसागर पार न कर पाओ।

ऐसा न कहो कि साधना के लिए समय ही नहीं मिलता। नींद की अवधि कम करो। लम्बी बातें बनाना बन्द करो। तुम्हें साधना के लिए पर्याप्त अवकाश मिलेगा।

इस संसार में रहो, परन्तु सांसारिक बुद्धि न रखो। संसार में काम-काज करते हुए भी शान्त बने रहो। बहुत सारे उत्तरदायित्वों के बीच भी अनासक्त बने रहो। हजारों लोगों से मिलना-जुलना पड़े, फिर भी अपने हृदय में एकान्त का अनुभव करो। भावों के उतार-चढ़ाव की अवस्था में भी सौम्य बने रहो। आध्यात्मिक साधनाओं के साथ-साथ सुनियमित, क्रमिक तथा अनुशासित जीवन बिताओ। अपने दैनिक कार्यों की एक तालिका रखो। यह बहुत आवश्यक है। दैनिक तालिका का अनिवार्यत: पालन होना चाहिए।

आध्यात्मिक प्रयासों में सदा नव उत्साह का संचार करो। धैर्य के साथ लगे रहो। प्रत्येक सुबह, उस दिन में क्या-क्या करोगे, इसका कार्यक्रम निर्धारित कर लो। दिनभर तुमने जो कुछ किया है, रात्रि में उस पर विचार करो। आध्यात्मिक डायरी में अपनी त्रुटि, दुर्बलता, दोष, प्रलोभन आदि को लिख डालो। आध्यात्मिक डायरी का अवलोकन करो। नयी प्रतिज्ञायें करो। प्रतिज्ञाओं पर अटल रहो। ईश्वर के निकटतर आते जाओ।

अत्यधिक उत्कण्ठा, दृढ़ विवेक तथा निरंतर अभ्यास—ये सब द्रुत ईश्वर-साक्षात्कार में सहायक होते हैं। आत्म-विश्लेषण, आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-संशोधन का अभ्यास करो। यही मुक्ति का पथ है। नित्यप्रति अपने आचरण पर दृष्टि रखो। तुम क्या सोचते हो, क्या बोलते हो, क्या करते हो, इन सभी चीजों से अपने को अवगत रखो।

दोष-दृष्टि का परित्याग करो। शंका को दूर करो। सब में शुभ दर्शन करो। किसी को नुकसान न पहुँचाओ। उन सारी चीजों को हटाओ जो तुम्हें दूसरों से पृथक् करती हैं।

वातावरण तथा परिस्थितियों के साथ न बहो। सशक्त बनो। उन पर विजय प्राप्त करो। प्रबल संकल्पशक्ति का उपार्जन करो। निराशा के भाव को कभी फटकने न दो। श्रद्धा, विश्वास, प्रतिज्ञा तथा संकल्प का सहारा लो। आंतरिक वाणी को सुनने के लिए शान्त तथा संतुलित बनो।

आलस्य, तन्द्रा तथा असावधानी को दूर करो। जीवन के पाठों से शिक्षा ग्रहण करो। अपने वास्तविक स्वरूप का सतत् बोध रखो। प्रयत्न करो, प्रयत्न करो, प्रयत्न करो।

अन्तर्निरीक्षण करो और आन्तरिक दोषों की खोज करो। विपरीत सद्गुणों के उपार्जन द्वारा एक-एक कर उनका नाश करो। जीवन में प्रगतिशील उसे ही माना जायेगा जिसका हृदय अत्यधिक कोमल बनता जा रहा है, जिसकी बुद्धि विवेकपूर्ण बन रही है, इसके अतिरिक्त जिसकी आत्मा शान्ति में प्रवेश करती जा

रही है। संसार में रहते हुए साधकों का चित्त जितना ही विशाल, भावना जितनी ही नि:स्वार्थमयी और जीवन जितना ही परहितनिरत होता है, उतनी ही अधिक मात्रा में उनका आध्यात्मिक विकास मापा जाता है।

अपने हृदय को मन्दिर बनाओ और उसमें सतत् ईश्वर की पूजा करो। दूसरी जगह उसकी खोज न करो। पूरी सच्चाई तथा श्रद्धा के साथ उसकी ओर मुड़ो। उसकी दिव्य शक्ति में आश्रय ग्रहण करो। वह तुम्हारे जीवन को दिव्य बनायेगा। तुम शान्ति प्राप्त करोगे। उसे खोजो। उसे प्राप्त करो। उसे जानो। उसका साक्षात्कार करो। जीवन की पहेली सुलझ जायेगी। सारी कामनायें विलुप्त हो जायेंगी। तुम शान्ति प्राप्त करोगे। ईश्वर के सिवा और किसी के साथ निकट सम्पर्क स्थापित न करो।

तुम्हारे जीवन का कर्तव्य होना चाहिए भगवान की सेवा करना, उद्देश्य होना चाहिए उन्हें प्रेम करना, लक्ष्य होना चाहिए उनमें समाहित हो जाना।

ईश्वर के नामोच्चारण से उनके प्रति अनुराग होता है, अनुराग से भक्ति आती है, भक्ति का रूपान्तरण भाव में होता है और भाव की इतिश्री समाधि में होती है। जिस प्रकार चुम्बकीय सुई सदा उत्तरी ध्रुव की ओर लगी रहती है, उसी प्रकार तुम्हारी इच्छा भी सदा ईश्वरीय इच्छा की ओर अनन्य भाव से लगी रहे। सुख तथा आराम के समय में भी ईश्वर का विस्मरण न करो।

ईश्वर से बातें करो, वही तुम्हारा अन्तर्शासक है। वही अन्तरात्मा है। उसे सदा अपनी स्थितियों से अवगत कराओ। वह सभी चीजों को ठीक कर देगा।

जो सरलचित्त हैं, ईश्वर उनके साथ चलता-फिरता है। जो नम्र हैं, ईश्वर उनके प्रति अपना रहस्य खोल देता है। जो भद्र हैं, ईश्वर उन्हें विवेक प्रदान करता है, तथा जो दम्भी हैं, ईश्वर उनसे पीछा छुड़ाता है।

अपने प्रति सच्चे बनो। उसी कार्य को करो जो उचित हो। कोई भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। जीवन को आनन्द का अजस्र स्रोत बनाओ। अपने विचारों में उदार बनो। प्रेम में सबको सम्मिलित करो। सारी बेड़ियों को तोड़ डालो।

किसी चीज की चाह न करो। किसी चीज की कामना न करो। किसी चीज की आशा न करो। किसी चीज की अभिलाषा न करो। तुम परिपूर्ण हो। तुम आत्मतृप्त हो। तुम सर्वानन्दमय आत्मा हो। आत्मसुख की अनुभूति करो।

तुम्हारी आँखों में करुणा, वाणी में माधुर्य और हाथों में कोमलता होनी चाहिए। सुन्दर और सौम्य विचारों को मन में स्थान दो, तुम्हारी वाणी वैसी ही बनेगी और तुम्हारे कर्म भी वैसे ही बनेंगे। अपने कुविचारों के द्वारा ही तुम अपने लिए नरक का निर्माण कर रहे हो। अच्छा चिंतन करो। अपने ही कार्यों के द्वारा तुम ईश्वर के नजदीक या उससे दूर होगे। बेकार बातों तथा दूसरों की आलोचनाओं के द्वारा तुम्हारा मन विक्षिप्त होता है तथा तुम ईश्वर को भूलते जाते हो।

दूसरों के दु:खों में अपने को विस्मृत कर डालो। जहाँ आत्मविस्मृति हो, वहाँ ईश्वर की अनुकम्पा बरस पड़ती है। स्वार्थरहित शुद्ध जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयत्नशील बनो।

हमारी आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, वे शुल्क नहीं लेते। पैर अपने रास्ते चला करते हैं। हे मनुष्य! इनसे शिक्षा ग्रहण करो और निष्काम सेवा करो। उस स्वार्थ का संहार करो जो शान्ति, भक्ति तथा ज्ञान का शत्रु है। जिस प्रकार मोमबत्ती अपने आपको जलाकर प्रकाश फैलाती है, उसी प्रकार तुम भी निष्काम सेवा द्वारा अपने कुसंस्कारों को जलाकर ज्ञान रूपी प्रकाश को फैलाओ। हाथ, पैर, फेफड़े, गुर्दे, दाँत—शरीर के सभी अंग एकतापूर्वक कार्य करते हैं, इनसे शिक्षा ग्रहण कर एकतापूर्वक काम करना सीखो।

खाना, पीना, सोना, थोड़ा हँसना और बहुत रोना! क्या यही सबकुछ है? कीटवत् न मरो। जगो, अमरानन्द को प्राप्त करो।

कुछ वर्षों तक जीना ही जीवन नहीं कहलाता। धन और यश को प्राप्त करना भी जीवन नहीं है। आत्मज्ञान प्राप्त करना ही वास्तविक जीवन है। यह अमर जीवन है। सत्य के लिए अपनी प्रियतम वस्तु का उत्सर्ग करना ही जीवन का परम सौन्दर्य है।

जीवन एक सुअवसर है जिसे भगवान अपनी संतानों को इसलिए प्रदान करते हैं कि वे उन्नत दिव्य अवस्था प्राप्त करें। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में उस प्रभु का उद्देश्य समझने की कोशिश करो। कैसी भी परिस्थिति क्यों न आए, सदा साहसी बने रहो। सत्योन्मुख रहो और विजयी बनो। सत्य की ही विजय होती है। सहनशीलता लाओ। इस मार्ग में तुम्हें अनेक बाधाओं, कठिन परीक्षाओं तथा असह्य कष्टों का सामना करना पड़ेगा। तुम्हारी श्रद्धा को परखने के लिए ही हर एक कठिनाई अथवा निराशा सामने आती है।

जिस परिस्थिति में ईश्वर तुम्हें रखे, उसी में संतुष्ट रहो। हर जगह, हर व्यक्ति के साथ अपने को अनुकूल बनाओ। प्रत्येक यातना तथा कष्ट, प्रत्येक आपत्ति तथा विपत्ति शनै: शनै: तुम्हें भगवान के अनुरूप ढालती है। तुम्हारे परम कल्याण के लिए ही ईश्वर शारीरिक कष्ट एवं मानसिक सन्ताप के रूप में तुम्हारी परीक्षा लिया करता है। कष्टों के द्वारा आत्मा शुद्ध होती है। इससे पाप तथा मल जल जाते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक व्यक्त हो उठता है। इनसे आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति होती है। संकल्पशक्ति तथा सहनशक्ति बढ़ती है। मन को समय-समय पर सचेत करने के लिए ही ईश्वर दु:खों एवं व्याधियों को भेजा करता है। जो कुछ होता है, तुम्हारी भलाई के लिए ही। यही सबसे बड़ा रहस्य है।

सच्चे बनो, दृढ़ बनो। अपने सिद्धान्तों पर डटे रहो। एक इंच भी अलग न होने पाओ। प्रत्येक शब्द पर निगाह रखो। यह सबसे बड़ा अनुशासन है। सबके लिए प्रेरणा तथा प्रकाश का प्रवाह बनो!

अपना सुधार करो। समाज का सुधार स्वत: हो जायेगा। तुममें से प्रत्येक व्यक्ति जो इन पंक्तियों को पढ़ता है, आज से ही, इसी क्षण से ही दिव्य जीवन यापन की प्रतिज्ञा कर ले तो इसमें क्या आश्चर्य कि समूचे समाज का सुधार हो जाए।

आओ, आज ही यह प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को ईश्वर साक्षात्कार के लिए ही व्यतीत करोगे। मैं तुम्हें सहायता दूँगा, किन्तु आरोहण कार्य तुम्हें ही करना है।

क्षमा के अवतार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा 1950 में स्वामी शिवानन्द जी के जीवन चरित्र पर काव्यमयी सरस भाषा में रचित एक अनुपम ग्रन्थ, 'चैतन्य ज्योति' से उद्धृत

क्षमा में जीवन-विकास की क्षमता है
और है क्षमता का अभ्युदय।
जिस अभ्युदय से खिल उठता है,
क्षेम जगत् का, औ' कल्याण।
इसी क्षेम में सौम्य महान्
और क्षमामयी-शान्ति-सनातन।

मई सन् 1946 की 15वीं तारीख थी। प्रात:कालीन गगन में अरुणिमा अस्त हो चुकी थी। लता-पत्र जागृत हो चुके थे। महिमामयी जाह्नवी के परम शीतल जल-प्रवाह में जन-समूह डुबकियाँ लगा रहा था। ब्राह्मणों के वेद-पाठ से पार्श्ववर्ती मणीकूट पर्वत की श्रेणियाँ मुखरित हो रही थीं। संन्यासी-गणों के गेरु वस्त्रों की छवि से प्रकृति का आँचल सज रहा था। प्रणव-ध्वनि से मानो सूर्यमण्डल भी बेधा जा रहा था।

हम सब लोग 'लक्ष्मी अष्टोतरशत' का पाठ कर शिवानन्द घाट की भूमि में सूर्य नमस्कार कर रहे थे। वैसे तो सहस्रों की संख्या में यात्री लोग आ-जा रहे थे। किसी में हमें कोई विशेष आकर्षण नहीं प्रतीत होता था। परन्तु इसी समय हम लोगों का ध्यान घाट पर उतरते एक युवक की ओर आकृष्ट हो गया।

उसका शरीर गठीला था। भौहें अत्यधिक मात्रा में तनी हुई थीं। उसके समस्त अंग अस्वाभाविक रूप से रचे हुए कृष्णवर्ण-केशाच्छदित थे। उसकी भावभंगिमा से कोई भी मनोवैज्ञानिक सहसा कह सकता था कि यह युवक अपने जीवन में कोई महाकलुषित-घृणित कर्म कर चुका होगा। आश्रम में रहते-रहते हम मनुष्य के मनोविज्ञान से इतने अभ्यस्त हो चुके थे कि प्रतिछाया मात्र से हमें उसके जीवन की विवेचना करने में देर न लगी। प्रतीक्षा इस बात की थी कि वह कब गुरुदेव के पास जाता है।

लगभग नौ बजे गुरुदेव 'हीरक जयन्ती भवन' में नित्य की भाँति आये। वायु काँप सी रही थी। सूर्य मेघमण्डलावृत हो चुका था। कुछ ही क्षण में दिशाएँ अस्वाभाविक रूप से अन्धकारमयी हो गयीं। भला भविष्य की कल्पना दैव के अतिरिक्त और कहीं कौन कर सकता था?

सहसा हमने दृष्टि घुमायी। अरे वही युवक...। वह स्वामीजी को प्रणाम कर रहा था। उसके शरीर से एक अजीब दुर्वासना का अनुभव हो रहा था। स्वामीजी ने उसकी ओर देखा। क्षणभर के लिए महात्मा के नेत्र चमत्कृत हो उठे। क्षणिक उस मनोवैज्ञानिक झलक में अवश्यमेव कोई भविष्य की घटना अन्तर्हित थी, सम्भवत: उस युवक की उपस्थिति ने महात्मा के अन्तर्निहित संस्कार जागृत कर दिये। हम लोगों ने इस क्षणिक चमक का अनुभव किया तो अवश्य, परन्तु यही हमारे अनुभव की सीमा थी। उसके उपरान्त आगमानुभूति हमारे लिए अज्ञेय थी।

यथावत् स्वामीजी ने युवक से वार्तालाप किया। 'मेरा नाम गोविन्द है...' उसने कहा। इसके उपरान्त उसने अस्त-व्यस्त शब्दों में अपने जीवन का करुण-इतिहास सुनाया। गृहस्थी के संकटों का स्पष्टीकरण करते हुए उसने अपने नवजात शिशु के जन्मोपरान्त स्त्री की आत्महत्या का कारुण्य-विलाप, चमत्कृत महात्मा के समक्ष कहा।

'उसकी आत्महत्या का उत्तरदायित्व इस घृणित-प्राणी पर है' उसने कहा था, 'मेरे व्यवहार से तंग आकर वह गर्भिणी यह अमानुषेय-कर्म करने पर उतारू हुई। मेरे दो बालक अब अनाथ हो चुके हैं...' उसकी कहानी बड़ी लम्बी थी। वह सर्वदा हम लोगों से वही बातें करता था। दिन-प्रतिदिन उसकी आकृति भीषण हो उठी। कोई अपरिचित उसकी उपस्थिति में जीवन-भय की अनुभूति कर सकता था। उसके घमासान केश डरावने थे, रात्रि के भयंकर-अन्धकार में कभी-कभी स्वामीजी की मनोवैज्ञानिक दृष्टियाँ किसी अज्ञात-भविष्य की याद में चमत्कृत हो जाती थीं।

आश्रमवासी गोविन्द की दिनचर्या से ऊबते जा रहे थे, वह न जप करता न ध्यान। आश्रम के कार्यक्रम में वह कभी भाग नहीं लेता था। दिन भर वह बूढ़े बाली की दुकान पर बैठा बीड़ी पीता रहता था।

एक बार मैंने हँसते हुए कहा, 'गोविन्द, तुमको मैंने कभी स्नान करते नहीं देखा...।' 'मैं...मैं' छोटी सी छड़ी घुमाते हुए उसने कहा...'स्नान...ह...हहह...।' फिर वह चुप हो गया।

इसके बाद मैं उससे भयभीत-सा रहा। उसकी भावभंगी का भयंकर-प्राबल्य मेरे मन में अंकुर बना चुका था! मैंने निश्चय कर लिया कि ऐसे व्यक्ति का रहना आश्रम के लिए हितकर नहीं है। जो मनुष्य आश्रम के नियमों के प्रतिपालन को स्वीकृत नहीं करता, उसको रखने से क्या लाभ?

एक दिन मैंने स्वामीजी से कहा कि गोविन्द के जीवन की भावभंगिमा दिन दूनी और रात चौगुनी भीषण होती जा रही है। न जाने कब वह क्या कर बैठे...।

स्वामीजी के नेत्र चमक उठे। शरीर में रोमांच आ गया। वे हँस पड़े। मनोवैज्ञानिक हँसी थी वह। उनके मुखारविन्द से एक शब्द भी नहीं निकला! दैव हँस रहा था।

मैं निर्वाक् खड़ा था। यह सब क्षणभर में हो गया। मन्थर-गति से उठते हुए उन्होंने कहा, 'संसार में अत्यधम और नारकीय मनुष्य भी कल का होने वाला महात्मा है, भावी सन्त है...'

पुन: नेत्र चमक उठे, मानो कह रहे हों, 'प्रारब्ध ही महान् है। विधाता का विधान अमर है। राजा-रंक, धनी-गरीब, देव-दानव, सज्जन-दुर्जन, सभी प्रारब्ध-कर्म के वश में हैं। उसकी सत्ता के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। कर्म-भोग-प्रधान है। देखते रहो दैव के विधान को...।'

इसके बाद हमने कभी स्वामीजी के नेत्रों को देखने का साहस नहीं किया। न मालूम कितनी बार गोविन्द की उपस्थिति उन्हें चमत्कृत कर देती होगी। हमने भरसक प्रयास किया कि गोविन्द को उसके गाँव भेज दें। परन्तु सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। न तो स्वामीजी ही स्वीकृति देते थे, न वह ही जाने का नाम लेता था। सम्भवत: प्रकृति का विधान निर्माण हो रहा था। दैव प्रबल था। सन्त पुरुष के जीवन पर आकस्मिक प्रहार का विधान रचा जा रहा था। दिन-प्रतिदिन आश्रम का वातावरण गहन-प्रशान्त होता जा रहा था। वृक्ष-पत्रों में वह मादकता नहीं थी। शंकरनन्दिनी भागीरथी का कलरव अज्ञात भय की आशंका से नि:स्तब्ध सा रहता था। सुरम्य-गगन में तारागणों की टिमटिमाहट उद्विग्नता को प्रकाशित करती थी। आश्रमवासियों की आकृतियाँ म्लान हो रही थीं। न मालूम क्यों खग-कलरव-कूजन स्तब्ध हो गया। वृक्षों में कूदते हुए बन्दरों की किलकिलाहट यथावत् न रही। आश्रम का रोम-रोम अज्ञात-आशंका से शंकित था।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो रहा था। विजन-विपिनस्थ वृक्षावलियाँ शून्यता का आँचल ओढ़े नि:स्तब्ध थीं। हम लोग कीर्तन कर रहे थे। गीता-पारायण से समस्त शिवनगर मुखरित सा हो रहा था। रात्रि के सत्संग में बाहर से आये अभ्यागत भी बैठे थे। भजन-भवन में यथावत् दो अखण्ड-दीप टिमटिमा रहे थे। सामने थे श्रीराम और मुरली मनोहर के सुरम्य चित्रपट! अखण्ड दीपों के प्रकाश से केवल भजन भवन का कोना प्रकाशित हो पाता था, द्वार-देश में निशा अन्धकार व्याप्त था। पार्श्ववर्ती खिड़की का आश्रय ले महापुरुष स्वामीजी ध्यानमग्न थे, और अस्वाभाविक रूप से उनके शीशमण्डल पर विशालकाय पगड़ी बँधी हुई थी। सम्भवत: यह दैव का ही विधान था, अथवा साधन-सम्पन्नता का प्राबल्य?

अन्धकार के गह्वर से प्रकट हुआ एक दानव। अन्ध-तम-आविष्ट वह दानव जयोतिर्मय जीवन को ग्रस्त करने बढ़ चुका था। कौन ऐसा सोच सकता था कि अन्धकार और महा-प्रकाश में संघर्ष का श्रीगणेश होने वाला है। सम्भवत: संघर्ष के साथ-साथ अन्धकार पर प्रकाश की विजय, विधान में अंकित थी।

कुल्हाड़ी हाथों में लिये गोविन्द की विशाल-घृणित काया प्रकाश द्वन्द्व के हेतु अग्रसर हो रही थी। मन में कलुषित विचार, चेहरे पर घृणा और कलंक उस अन्धकार को और भी प्रगाढ़ बना चुके थे। प्रवेश-द्वार पर पहुँचने में उसे क्या देर लग सकती थी, जब कि कोई प्रहरी भी नहीं था। और स्वामीजी प्रवेश-द्वार से आठ इंच हटकर बैठे थे। न मालूम ध्यानावस्थित उनके नेत्र कितनी बार चमक जाते होंगे। अन्धकार में अग्रसर गोविन्द का कलुषित कर्म उन्हें स्वीकृत था। वे चाहते तो अपने को इस महाप्रहार से वंचित रख सकते थे। परन्तु वे तो महान् थे, शास्त्र सिद्धान्त जानते थे, 'कर्म-प्रधान विश्व रचि राखा'। मानव-देह के प्रारब्ध कर्मों की समाप्ति उन्हें इष्ट थी। अत: वे ध्यानमग्न थे। गोविन्द का कुल्हाड़ी लेकर आना उन्हें मालूम न पड़ा।

दानव का वज्रहस्त उठा। निर्लिप्त-आकाश की असीमता में कुल्हाड़ी की धार हँस रही थी। लपलपाती तीव्रता की परछाई में नर-पिशाच के अरमान, दानवी-विभीषिका की गोद में अट्टहास कर रहे थे। अन्धकार में शान्ति नहीं, वरंच पैशाचिकता नृत्य कर रही थी। दरवाजे के पास पैशाचिक अन्धकार में गोविन्द ने कुल्हाड़ी उठायी, सत्य-सनातन-वैदिक-युग-प्रवर्तक चैतन्य-ज्योति की असीम-जीवन-विशालता का अभ्युदय छत्र हटाने; अन्धतम विजड़ित अज्ञ-मानवता के प्रकाश निखिल विश्व के सिरमौर के जीवन चक्र पर आघात करने नर-दानव गोविन्द का शस्त्र उठा। देवता काँप उठे। वायु में सनसनाहट और भीषण शब्द होने लगा। ऐसा ज्ञात होता था मानो समस्त पदार्थ रात्रि की विभीषिका में प्रणव का उच्चारण कर, आने वाले संकट का निवारण करना चाहते हों। विशालकाय, गगन-चुम्बी तरुवर थर्रा रहे थे। विजन-विपिन के प्रान्त में अरण्य-प्रहरी क्षितिज पर्यन्त अपनी मुखरिणी से वातावरण को कम्पायमान कर रहे थे।

गम्भीर गति से शस्त्र उठ रहा था। तीव्रतर धारें चमक-चमक कर मानो हिंसावृत्ति में भी सन्त-महापुरुष के सौम्य स्वरूप को देखना चाहती हों। वातावरण में भीषणता आने लगी। दूर ग्राम-प्रहरी अमंगल वातावरण को विकट बना रहे थे। जहाँ तक कल्पना जा सकती है, जहाँ-जहाँ अणुमात्र की भी सृष्टि थी—समस्त वातावरण हिंसा, अशान्ति, भीषणता और अनवरत द्वन्द्व से समायुक्त था। और शस्त्र गिरा, इन्द्र भी विचलित हो गये, भगवान् शचिपति पहचान गये अपने आराध्य को। गोविन्द का हाथ काँप गया। क्यों न काँपेगा, जबकि हाथों के अधिष्ठाता भगवान् शचिपति जो हैं। लक्ष्य विचलित हो गया। प्रबल-प्रभंजन आघात से कम्पित द्वार ने प्रहार को रोका। पैशाचिकता को मुँह की खानी पड़ी। दिगन्त-व्यापी अट्टहास के साथ-साथ दरवाजे में कम्पन का आधिक्य हुआ। पास ही दीवार पर टँगे चित्र का बन्धन ढीला होने लगा और चित्र धीरे से दरवाजे के कम्पन से कम्पायमान होने लगा।

दानव का साहस क्षीण हो गया! पुनः शस्त्र उठा, धारें फिर चमकीं। वायु वेग प्रबल हो गया। दीवार पर टँगे चित्र में अस्थिरता का आधिक्य हुआ। पुनः शस्त्र-प्रहार हुआ! अब तो चित्र की बारी थी। भीषण विद्युच्छटावत् चमकते हुए शस्त्र के प्रहार का सामना अचेतन चित्र ने किया। प्रहार चूक गया। चित्र ने अपने आराध्य की रक्षा में अपने जीवन को चिन्मय बना लिया। चित्र से बिखरते हुए काँच पैशाचिकता की दूसरी हार पर मानो खिलखिला कर हँस रहे थे।

पैशाचिकता निराश हो गयी! दुर्दम्य गोविन्द ने तीसरा प्रहार किया। स्वामीजी की शीश शोभा अस्वाभाविक पगड़ी ने शिरस्त्राण का कर्तव्य सम्पन्न किया। कुल्हाड़ी ठीक सिर पर गिरी, पर विशालकाय पगड़ी में फिसलती हुई स्वामीजी के हाथ पर बैठ गयी। सम्भवतः अन्तिम बार अपने आदि पुरुष को जाना। इसीलिए तो यह असामयिक चुम्बन यथेष्ट था।

अब जाकर हमें घटना का ज्ञान हुआ। घटना का वर्णन करने में जितना समय लगा, उसके हजारवें भाग से भी अल्प समय में इस दानवीय कर्म का श्रीगणेश और उसकी समाप्ति भी हो गयी। विष्णुस्वामी ने उठ कर विद्युत के समान झपट गोविन्द का प्रगाढ़ आलिंगन कर लिया। सम्भवतः वह नर दानव चौथा प्रहार भी कर बैठता, यदि हम सब सत्वर उसके हाथ-पाँव न बाँध देते।

सभी लोग क्रोधान्वित हो रहे थे। दो-चार लोगों ने गोविन्द की लात-घूसों से पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। न जाने क्या हो गया होता यदि चेतनागत स्वामीजी ने उन सबको न रोका होता।

यहाँ पर क्षमा के अवतार की कठोर परीक्षा सम्पन्न हुई। अपकार का बदला चुकाया, परन्तु उपकार से। हिंसा का प्रहार रोका, शान्ति और सौम्य प्रकृति से। जीवन पर जिस दानव ने मृत्यु का प्रहार किया, उसे बदले में मिली परम शान्त अमृतमयी क्षमा। यहीं पर मानव और देव की कर्म पराकाष्ठा है। यहाँ पर मानव या

तो राक्षस बन जाता है, अथवा जीवन वैभव की विशालता देवत्वावस्था में दीक्षित और संस्कृत माना जाता है।

यहाँ पर मनुष्य कठिन परीक्षा का सामना करता है, जहाँ पर प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सदा हताश होता रहता है। घृणा को भी प्रेम समझने वाला सन्त जगत् में एक ही होता है। जबकि लोग गोविन्द के ऊपर प्रहार कर रहे थे, स्वामीजी ने अपनी सहज-अवस्था में लौटकर सबको रोका। उनके माथे पर कोई भी परिवर्तन नहीं था। यथावत् सौम्यवृत्ति-प्रधान स्वामीजी की मुखाकृति से स्पष्ट भान होता था मानो कोई घटना घटी ही नहीं हो। क्या यहाँ मनुष्य, देवता, जीवन्मुक्त और चैतन्य-पुरुष की सत्ता का सत्य सिद्ध नहीं होता?

स्वामीजी की आज्ञा के अनुसार गोविन्द सुरक्षित ही रहा। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना हमें इष्ट नहीं था। इच्छा तो थी कि गोविन्द की बोटी-बोटी अलग कर दें, परन्तु यहाँ स्वामीजी ने पानी ही फेर दिया। यथोचित सुरक्षा के साथ गोविन्द को रखा गया, ताकि लोग बदला लेने न पायें। उसके लिए भोजनादि का भी विशेष प्रबन्ध किया गया। अन्त में प्रार्थना करते हुए स्वामी जी ने मन्त्रोच्चारण किया–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

समस्त दिग्मण्डल गूँज रहे थे। पर्वत शान्त थे। नभ-मण्डल स्वच्छ था। ध्वनि तीव्रतर होती जा रही थी–

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।

यह विश्व-व्यापिनी एकाकार प्रार्थना थी, जहाँ पर व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में देखता हुआ, कल्याण और क्षेम की प्रार्थना और सबके ज्ञान की चाह रखता है। अद्वैत निष्ठा में परिनिष्ठित रहते हुए वह गा रहा था।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

समस्त वातावरण मन्त्रमुग्ध सा था! वायु भी शान्त थी। पत्ते भी शान्त थे। जाह्नवी भी शान्त थी, क्योंकि स्वयं अमर-शान्त महापुरुष शान्ति के गीत गा रहा था। शब्दों में अखिल ध्वनि थी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महतोमहीयान्। जभी तो पैशाचिकता भी सिर झुकाये अचेतन थी।

उपर्युक्त घटना का कारण कुछ नहीं भी था, तो भी यह प्रारब्ध कर्म की इतिश्री थी। बिना कारण के कर्म की श्रुति तो कहीं सुनने में नहीं आती। बिना कारण के न तो कर्म है, और न कर्म प्रधान व्यावहारिक सत्ता ही विद्यमान है। स्वामीजी के ऊपर प्रहार के कारण कुछ नहीं थे, फिर भी हम शास्त्र ज्ञान के बल कहने का साहस करते हैं कि पंचभौतिक शरीर भी तो इसका कारण हो सकता है। शरीर के रहने तक प्रारब्ध कर्म सजीव रहते हैं। अतः कारण की अनुपस्थिति में भी प्रारब्ध कर्मरूप शरीर ही इस घटना का कारण बना, अन्त में एक कर्म के संचय को शेष कर गया। यदि भोक्ता साधारण मनुष्य होता तो हिंसा का बदला हिंसा से देकर प्रारब्ध कर्मों को और भी प्रबल बना देता। परन्तु यहाँ तो महापुरुष का प्रश्न जो था। इसीलिए उसने प्रतिक्रियावाद का खण्डन कर आगम कर्मों की प्रगति रोक दी।

ऐसे महापुरुष संसार में विरले ही नहीं, वरन् कोई एक ही आपको दिखायी देंगे। गीता ने उसे स्पष्ट किया है, 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये,' वास्तव में स्वामीजी के समान विरले मनुष्य ही मानव जीवन की सिद्धि की पराकाष्ठा के क्षितिज तक विहंगम दृष्टि से अनुपात की कल्पना कर सकते हैं। जहाँ साधारण-सा मनुष्य अपने पर किये गये अपमान का बदला लेने में खून-खराबी भी करने से नहीं हिचकता, वहाँ पर एक परम-सत्ताशील स्वामीजी, जिनके आदेशमात्र पर शासन की बागडोर शिथिल हो सकती थी, जिनके इशारों पर जनता असम्भव को

भी सम्भव करने पर जा तुलती, अपनी सौम्य प्रकृति के बल अधमाधम पुरुष में भी सर्वात्म दर्शन करने से न चूके। मलिनों में छवि, दानव में देवत्व, मृत्यु में जीवन, जीवन में ब्रह्म का साक्षात्कार ही जीवन का विशेष लक्ष्य है।

केवल क्षमादान ही उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं थी। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया कि गोविन्द को जिस किसी प्रकार उसके घर भेजा जाये, जिससे समाज के द्वारा लांछित गोविन्द शान्ति प्राप्त करे। परिवर्तन तो मनुष्य जीवन में कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु एक परिवर्तन के उपरान्त अन्य परिवर्तन मनुष्य के हताश हृदय को शान्ति दान देता है।

कहना नहीं होगा कि गोविन्द सकुशल मद्रास पहुँच गया। उसके हताश-चित्त मातृविहीन पुत्रों ने सुख के आँसू बहाये, क्योंकि उनका पिता एक नवजीवन लेकर आया था। गले में माला थी, मस्तक पर भस्म था, हाथ में गीता थी और चेहरे पर झलक थी महात्मा के आशीर्वाद की।

गृहस्थ-धर्म-प्रवृत्त गोविन्द का पत्र आते ही स्वामीजी ने सन्तोष की साँस ली। पत्र में भरी थी मानवीय-कृतज्ञता। वह कृतज्ञता, जो भक्त की भगवान के प्रति ही सम्भव है। पत्र में निरुद्वेग था और थी एक अथक क्षमा की विनय।

स्वामीजी शान्त थे। चेहरे में निर्मल प्रकाश था, आभा थी, क्षमा के आविर्भाव की मधुर झाँकी थी। उनके रोम-रोम से सौम्य भावना के स्रोत बह रहे थे। 'क्षमा के अवतार' महापुरुष मुस्कुरा रहे थे। समग्र शान्ति थी। दिग्मण्डल शान्त थे। तप्त-मार्तण्ड भी शान्त हो चुका था। स्निग्ध-चन्द्रोदय भी पूर्ण शान्ति की वर्षा कर रहा था। वातावरण में क्षमा का आलोक प्रकाशित था। विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के ज्वलन्त उदाहरण स्वामीजी ध्यानस्थ थे। हम सब सन्निकट खड़े थे और मौन प्रणाम कर रहे थे, क्षमा के अवतार, स्वामी शिवानन्द जी को।

स्वामी शिवानन्द का प्रेरक जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे परम गुरु, स्वामी शिवानन्द जी भारत के एक ऐसे सन्त और साधु रहे जो अध्यात्म में पूर्णरूप से ओत-प्रोत हो गये। हरेक संन्यासी सिद्ध नहीं होता है और हरेक गेरूधारी संन्यासी नहीं होता है। अगर गधे को शेर की खाल पहना दें तो गधा शेर नहीं बनता है। शेर बनने के लिये शेर रूप में जन्म लेना आवश्यक है। कुछ ही ऐसे महान् पुरुष इस धरती पर हुये हैं जिन्होंने उस प्रकार के संस्कार के साथ जन्म लिया है। हमारी संन्यास परम्परा के प्रवर्त्तक, आदिगुरु शंकराचार्य का एक संस्कार को लेकर, एक लक्ष्य को लेकर जन्म हुआ था। इसी प्रकार हमारी परम्परा में स्वामी शिवानन्द जी का विशेष स्थान है, क्योंकि ये भी एक उद्देश्य और संस्कार को लेकर इस धरती पर आये थे, और यही संस्कार स्वामी शिवानन्द जी को अध्यात्म की ओर लाया।

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

स्वामी शिवानन्द जी का दक्षिण भारत में ताम्रपर्णी नदी के किनारे कुप्पूस्वामी के नाम से जन्म हुआ था और बचपन से ही उनके जीवन में ऐसे व्यवहार, विचार और संस्कार थे जो दर्शाते थे कि यह बालक एक अनूठा, प्रतिभासम्पन्न बालक है। जब लकड़ी सूखी होती है, पत्ते सूखे होते हैं तो एक चिंगारी से ही उसमें आग लगती है, पर अगर लकड़ी गीली हो तो चाहे कितनी ही कोशिश करो, धुँआ ही निकलेगा। स्वामी शिवानन्द जी सूखी लकड़ी की भांति थे, और हमलोग गीली लकड़ी हैं। हमारे भीतर बहुत-सी कामनाएँ, इच्छाएँ और कर्म शेष हैं, जो हमें शुद्धता, पवित्रता और प्रकाश से दूर रखते हैं, लेकिन जैसे-जैसे इन विकारों से हमें मुक्ति मिलती है, हमारे भीतर की वासनाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ सूखती हैं तब उनके सूखने पर अध्यात्म की अग्नि तत्काल प्रज्वलित होती है।

महात्मा बुद्ध से किसी ने एक बार पूछा था कि हमारी आध्यात्मिक प्रगति हो रही है या नहीं, इसकी जानकारी हमें कैसे मिले? महात्मा बुद्ध ने एक ही वाक्य में उत्तर दिया था, 'जब तुम अपने जीवन की कामनाओं, वासनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को कम होते देखोगे, उन्हें अपने लिये उपयोगी या आवश्यक नहीं देखोगे तब तुम समझ लेना कि तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति हो रही है।' जब तक हमारे मन में एक कामना या वासना है, हमारा मन उत्तेजित और चंचल रहेगा। इस चंचलता और उत्तेजना में वह कभी भी शान्त और स्थिर नहीं हो सकता है, वह आत्म-तृप्ति के लिये ही प्रयास करता है। आत्म-तृप्ति के प्रयासों को हम स्वार्थ कहते हैं। अपने

सुख के लिये जो कर्म होता है उसको कहते हैं स्वार्थ। स्वार्थ ही हमारे जीवन रूपी लकड़ी को गीला करता है। यह मिश्रण है इच्छा, अहंकार, लोभ, घृणा, राग और द्वेष जैसे अनेक तत्त्वों का। विषयों की ओर जो आकर्षण होता है उससे हम मुक्त नहीं हो पाते। इसलिये हमलोगों की लकड़ी गीली रहती है।

हमारे परम गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के जीवन को कौन-सी चिंगारी मिली? एक छोटी-सी किताब, जो एक संन्यासी ने उनको मलाया में प्रदान की थी। उस किताब का नाम था, ब्रह्मविचार। उन्होंने एक रात में ही उस किताब का अध्ययन किया और अगले दिन अपना सब कुछ लोगों को देकर शाम तक मलाया से प्रस्थान कर गये। कुछ दिनों के बाद वे मद्रास के बंदरगाह पर उतरते हैं, बंदरगाह से ट्रेन स्टेशन आते हैं, अपने एक मित्र को स्टेशन बुलाते हैं, कहते हैं कि मेरा यह सामान घर पहुँचा देना और परिवार वालों को मेरा प्रणाम निवेदित कर देना। अगर वे पूछते हैं कि कुप्पुस्वामी कहाँ गया, घर क्यों नहीं आया, तो उनसे कहना कि वह अपने भाग्य को जगाने के लिये जा रहा है।

संन्यास में प्रवेश

ट्रेन पकड़कर वे चल पड़े उत्तर भारत की ओर। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच एक स्थान पर पेड़ के नीचे बैठकर जब विश्राम कर रहे थे तब उनकी बन्द आँखों के सामने एक छाया आती है। किसकी छाया है, यह देखने के लिये उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। देखते हैं कि उनके सामने एक संन्यासी खड़े हैं जो उनसे पूछते हैं कि

तुम यहाँ क्या कर रहे हो। स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि मैं गुरु की खोज में हूँ, संन्यास चाहता हूँ। उस महापुरुष ने कहा, मेरा नाम स्वामी विश्वानन्द सरस्वती है, मैं तुम्हें संन्यास देने आया हूँ, तुम अभी तैयार हो जाओ। बिन खोजे गुरु भी मिल गये! जिसका प्रारब्ध होता है गुरु उसके पास खुद आ जाते हैं। लेकिन यह प्रारब्ध उन्हीं को नसीब होता है जो पूर्णरूप से अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पित करते हैं, जैसे स्वामी शिवानन्द जी ने किया। तब जाकर ईश्वर उनका ख्याल करते हैं। ईश्वर ने एक साधु को भेज दिया, उनके गुरु उनके सामने आ गये।

गुरु हमारे घर आयेंगे, ऐसा गृहस्थ लोग भी सोचते हैं, लेकिन ऐसा होने वाला नहीं है क्योंकि वह समर्पण और श्रद्धा का भाव तो है नहीं, केवल अहंकार है कि वे मेरे घर आयेंगे। स्वामी शिवानन्द जी में ऐसा कुछ अहंकार नहीं था। गुरु उनके सामने आ गये, दस मिनट में उनकी विधिपूर्वक संन्यास दीक्षा भी हो गई और फिर गुरु प्रस्थान भी कर गये। उसके बाद फिर स्वामी शिवानंद जी अपने गुरु से जिन्दगी भर कभी नहीं मिले। लेकिन गुरु ने जो चिंगारी प्रज्ज्वलित की उसने अग्नि बनकर स्वामी शिवानन्द जी को गुरुमय और ईश्वरमय बना दिया।

शिक्षा और संदेश

उस समय संसार विश्व युद्धों के दौर से गुजर रहा था। उस समय का समाज विश्व युद्ध के कारण आक्रांत था। इसलिए स्वामी शिवानन्द जी ने शान्ति, प्रेम और सेवा की शिक्षा थी। एक साधु जिसकी दूर दृष्टि होती है, वह समय को देखकर प्रासंगिक और अनुकूल विधियों का ही प्रचार करता है। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने काल में प्रेम और शान्ति की शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि अपने भीतर के द्वेष और घृणा को, माया और मोह को, स्वार्थ और ईर्ष्या को, जो तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ रूप से भरे हुये हैं, उन्हें दूर करो और तब जाकर तुम आंतरिक शांति का अनुभव करोगे। उन्होंने यह नहीं कहा कि भगवान पर ध्यान करो या मंत्र का जप करो। हाँ, व्यक्तिगत स्तर पर लोगों को कहते थे, लेकिन जो सामान्य शिक्षा थी उसमें यही कहते थे कि भीतर में उत्पात मचाने वाले तत्त्वों को तुम अपने वश में रखो, तभी तुम जीवन की दिव्यता को पहचान पाओगे। जब तक तुम अपने इस मानसिक उत्पात को कम नहीं करोगे तब तक तुम दिव्यता से दूर रहोगे। इसीलिये उन्होंने जिस आन्दोलन का शुभारम्भ किया उस संस्था का नाम दिया 'दिव्य जीवन संघ'। योग आश्रम या धर्माश्रम या अन्य किसी आश्रम का नाम नहीं दिया, बल्कि नाम दिया दिव्य जीवन संघ, जहाँ पर यह शिक्षा दी जा सके कि मनुष्य अपने भीतर की दिव्यता को किस प्रकार प्रस्फुटित एवं अभिव्यक्त कर सकता है।

दिव्यता जीवन की सकारात्मकता है, शुभता है। दिव्यता हमेशा सकारात्मक पक्ष से जुड़े रहने की स्थिति है। स्वामी शिवानन्द जी ने कहा कि इस स्थिति को

प्राप्त करने के लिये तुम्हें अपने मन के साथ काम करना होगा। मन के भीतर उत्पन्न होने वाले दानवों को तुम देखो और उनको तुम शान्त करो। वे भारत के पहले संत हैं जो बतलाते हैं कि किन-किन बाधाओं के प्रति सजग रहना है, और उनको लांघकर उत्तमता को प्राप्त करना है। उनके गीतों और कविताओं में बहुत सारी ऐसी बातें कही गई हैं जो अनुकरणीय हैं, जो जीवन की उत्तमता को प्रदर्शित करती हैं।

उनकी शिक्षाओं को हम आठ रूपों में देख सकते हैं–सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, अच्छा बनना, अच्छा करना, ध्यान तथा साक्षात्कार। वे जोर देकर कहते थे कि सेवा करो, प्रेम करो, दान करो, क्योंकि यह उस माहौल में आवश्यक था। इतना करने के बाद अपने आपको शुद्ध बनाओ, मन को पवित्र करो, कुभावों को दूर करो, अच्छा बनो, अच्छा करो, ध्यान करो और प्रकाश को प्राप्त करो। यह हमारे परम गुरु, स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग है। आप लोगों ने तो आजकल योग को केवल आसन तक ही सीमित कर दिया है। जो टी.वी. में देखते हो उसी को योग मानते हो, और यह भूल गये हो कि योग जीवन परिवर्तन की प्रक्रिया है, यह भूल गये हो कि योग के द्वारा हम अपनी सुषुप्त, सकारात्मक प्रतिभाओं को संसार में उपयुक्त कर सकते हैं। अगर कोई कहता है अच्छा बनो, अच्छा करो तो आप कहते हैं, मुझे मालूम है, मुझे यह सब नहीं चाहिये, मुझे आदर्शवाद पर प्रवचन नहीं चाहिये। लोग अपने आप से कितने दूर हो गये हैं!

कुछ महीनों पहले ऑक्सफॅर्ड विश्वविद्यालय में एक कोर्स हुआ था, कोर्स ऑन हैप्पिनेस, प्रसन्नता का कोर्स, और उस दो महीने के सत्र में सबसे अधिक विद्यार्थियों ने भाग लिया। इसलिए कि आजकल कोई खुश है ही नहीं। हर कोई अप्रसन्न है, चिन्ताग्रस्त है और मन में मरणासन्न अवस्था में है। आज विश्वविद्यालयों में प्रसन्नता का कोर्स होता है! क्या यह हमलोगों के व्यक्तित्व का उत्थान है या पतन कि आदमी अपने जीवन में खुश रहना भूल गया और कॉलेज में जाकर सीखना पड़ रहा है कैसे खुश रहें? और डिप्लोमा लेकर निकलते हैं कि हमने प्रसन्नता का कोर्स किया है! यह मनुष्य जीवन के साथ दुर्व्यवहार नहीं तो और क्या है! समाज इसका दोषी है, व्यक्ति इसका दोषी है, क्योंकि वह अपने आपसे अलग हो गया है।

इसीलिये स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। आज भी मनुष्य को सहयोग, प्रेम, दान, शुद्धता और अच्छाई की आवश्यकता है। वास्तव में देखा जाए तो यही योग है। आसन-प्राणायाम तो योग का एक अंश मात्र है। आप जो इतना हल्ला करते हो कि मैं तो रोज आसन करता हूँ, उससे आपको मिला क्या है? हाँ, थोड़ा बहुत लचीलापन आया है, कमर दायें-बायें हिलने लगी है, इससे ज्यादा कुछ नहीं हुआ है। मन का क्या हुआ है? जैसे का तैसा ही है। योग सिर्फ आसन और प्राणायाम नहीं है। वे तो मात्र क्रियाएँ हैं अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिये, अपने प्राणों को जागृत करने के लिये, इससे अधिक नहीं। असली योग तो मन के भीतर होता है।

हम तो स्पष्ट कहते हैं कोई साधु योगी नहीं है, क्योंकि किसी का अपने मन पर नियंत्रण नहीं है। साधु अपने ही अहंकार में भ्रमित रहता है। जब उसको सम्मान नहीं मिलता है तो बुरा मानता है। तो क्या ऐसे व्यक्ति को हम संन्यासी मानेंगे जो अपने ही अहंकार की चोट में मरा पड़ा है और दूसरों से सम्मान की कामना करता है?

प्रसन्नता और विनम्रता

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि जीवन में प्रसन्न रहना सीखो और सबका सत्कार करना सीखो। अगर प्रसन्न रहते हो और सबका सम्मान कर सकते हो, शुद्ध दिल से, केवल दिखावे के लिये नहीं, तब यह मानकर चलना तुमने अपने अहंकार को वश में कर लिया। जब जीवन में अप्रसन्नता होती है तो इसलिये होती है कि अहंकार पर चोट लगती है, इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं, मन अपने आपको असहाय और अकेला पाता है। यही कारण हैं अप्रसन्नता के। एक तरफ कहते हैं कि *विद्या ददाति विनयम्*, विद्या से नम्रता की प्राप्ति होनी चाहिये, लेकिन आज तक हमने किसी में विद्या से नम्रता की प्राप्ति होते नहीं देखा है, बल्कि अहंकार को बढ़ते देखा है। मैं ज्यादा जानता हूँ, मैं पढ़ा-लिखा हूँ, मैं बुद्धिजीवी हूँ—यह भाव अहंकार को ही बढ़ा रहा है। जब विद्या को मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है तब अहंकार बढ़ता है और जब विद्या को जीवन में आत्मसात् किया जाता है तब विनम्रता आती है। इस बात को याद रखना।

ये दो स्थितियाँ स्वामी शिवानन्द जी के जीवन में दिखलाई देती हैं और यही हमारी यौगिक जीवनशैली के मौलिक यम-नियम हैं—मन:प्रसाद और नमस्कार। मन:प्रसाद है प्रसन्नता और नमस्कार है विनम्रता। अगर आप गणना करोगे कि दिन में आप कितने समय के लिये प्रसन्न हो तो देखोगे कि चौबीस घंटे में हम मात्र एक-दो घंटा ही खुश रहते हैं, जबकि बाकी समय तनाव, चिन्ता, परेशानी, दु:ख, क्रोध, भय और निराशा में बीतता है। जब आपकी कुल प्रसन्नता पूरे दिन

में दो घंटे की है तो आप इसे क्यों नहीं बढ़ा पाते हो? असली चीज है प्रसन्नता के क्षणों को बढ़ाना। अगर आज दो घंटा है तो कल दो घंटा पाँच मिनट, परसों दो घंटा दस मिनट, तरसों दो घंटा पन्द्रह मिनट, इस तरह बढ़ाते जाओ, और बरसों में फिर कितना हो जायेगा, अंदाज लगा लो। बरसों में तो सौ गुणा हो जायेगा, और इससे बढ़िया आपको क्या चाहिये?

चाह गई चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिसे कछु न चाहिये वही शाहंशाह॥

दूसरी चीज है नमस्कार। यह एक भाव है जिसको सिखाया नहीं जाता। हमारे पास माताएँ आती हैं अपने बच्चों को लेकर और उनसे कहती हैं, स्वामीजी को प्रणाम करो। अगर बच्चा बात नहीं मानता तो माता को सहन नहीं होता, वह बच्चे का गला पकड़कर जबरदस्ती उसके सिर को नीचे करती है। बच्चा फिर कभी मेरे सामने नहीं आयेगा। आप लोग बच्चे को एक संस्कार देने के बजाय उसे संस्कार से अलग करते हो। आप बच्चे पर जोर-जबरदस्ती करके उसे संस्कारहीन बना रहे हो। किसी के दबाव में आकर नमस्कार नहीं किया जाता।

वास्तविक नमस्कार होता है जब स्वत: किसी को सम्मान देने की इच्छा होती है। जब किसी को सम्मान देना है तो स्वत: नमस्कार होता है—आइये, पधारिये। आप विनम्र भाव को व्यक्त करते हो, अड़ियलपन को नहीं। उसके बाद जब थोड़ी

लगन हो जाती है तो प्रणाम करने के बदले हाथ पैर छूने के लिये नीचे चले जाता है। एक बार जब हाथ और सिर दोनों पैर छूने के लिये नीचे चले जाते हैं तब फिर आत्म-समर्पण की अवस्था आ जाती है। स्वयं करके देखो, नमस्कार से आत्म-समर्पण तक एक पूरी प्रक्रिया है जिससे आपको गुजरना पड़ता है। लोग मानते हैं कि नमस्कार मात्र एक सम्मान-द्योतक प्रक्रिया है, लेकिन इसके अतिरिक्त यह आत्म-समर्पण की भी विधि है।

स्वामी शिवानन्द जी के जीवन का एक दृष्टांत देता हूँ। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वयं बतलाया है कि मैं सभी को मन में नमस्कार करता हूँ, चाहे वह लड़की हो, लड़का हो, महिला हो, पुरुष हो, बुढ़िया हो, बूढ़ा हो। बिना नमस्कार किये मैं उनको देखता नहीं और बात नहीं करता। अगर कोई मेरे सामने आ जाए तो सबसे पहले मैं उन्हें नमस्कार करूँगा, तब उनसे उनका खुशहाल पुछूंगा। एक बार जब वे अखिल भारत यात्रा पर निकले थे तो चेन्नई पहुँचे और वहाँ से रामेश्वरम् जाने वाले थे। चेन्नई के एक भक्त ने स्वामी शिवानन्द जी से कहा कि मेरी बेटी बीमार है, वह आपका दर्शन चाहती है। पास में घर है, वहाँ आकर उसको दर्शन दे दीजिये। स्वामी शिवानन्द जी ने कहा कि मेरे पास समय नहीं है, मुझे अन्य कार्यक्रम में जाना है, मैं नहीं आ सकता हूँ। और उसके बाद गाड़ी में बैठ गये। थोड़ी दूर गये होंगे कि उन्होंने ड्राइवर से कहा, गाड़ी रोको और उस घर पर चलो। वे उस घर में गये और जिस लड़की ने उनके दर्शन की कामना की थी, उसके सामने सष्टांग प्रणाम किया और कहा, माँ मुझे क्षमा करना, मैं अपने अहंकार में भूल गया था कि तुम माँ हो, देवी हो। एक ही आशीर्वाद दो कि ऐसा भाव मेरे जीवन में फिर कभी नहीं आये।

अब उनकी महानता देखिये। बड़े लोगों की तरह वे कह सकते थे कि मेरे पास समय नहीं है, मुझे अगली सभा में जाना है, वे लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, लेकिन उन्होंने चिन्तन किया कि मैंने जाने से मना क्यों किया। अपने कार्यक्रम के कारण नहीं, अपने अहंकार के कारण। मेरा अहंकार बाधा बन रहा है मेरी भक्ति और श्रद्धा में। गाड़ी वापस करो, अहंकार को पहले खत्म करना है, इसके बाद फिर कार्यक्रम में जायेंगे। ऐसी थी उनकी विनम्रता।

हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी बहुत बार कहते थे, 'मैं तो देखते-देखते परेशान हो जाता था, स्वामी शिवानन्द जी सभी के पैर पड़ते हैं। मेरी आदत तो थी नहीं। वे कहते थे जाकर उसके पैर पड़ो, मैं कहता था, नहीं मैं आपके ही पैर पड़ूँगा। वे कहते थे, गरीब कोढ़ी की सेवा करो। मैं उसकी ओर देखता, बदबू आ रही है, मर रहा है, जाने वाला है, कौन सेवा करेगा। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी में मुझे वे गुण दिखलाई दिये जो मुझ में नहीं थे, और उन गुणों को प्राप्त करने के लिये मैं प्रयत्नशील हुआ। पता नहीं कितना मुझे मिला है,

लेकिन प्रयास सदैव यही रहा कि जिन गुणों को अपने गुरु में देखा, उन गुणों को मैं अपने जीवन में आत्मसात् करूँ।'

हमारे परम गुरु, स्वामी शिवानन्द जी का ऐसा उदात्त व्यक्तित्व था! वे वास्तव में इस युग के महानतम संतों में रहे हैं। उनकी कालजयी शिक्षा का प्रसार पूरे विश्व में हुआ। उनकी शिक्षा के प्रसार का एक स्वरूप मुंगेर में है और दूसरा स्वरूप रिखिया में है क्योंकि वह भी उनका आदेश था। इन दोनों आदेशों को मूर्त्तरूप दिया हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने।

–25 जुलाई 2018, गुरु पूर्णिमा महोत्सव, पादुका दर्शन

प्रसन्नता का मार्ग

याकूब ने सुना था कि संत तालमुद पहुँचे हुए फकीर हैं। उनकी दुआ से दु:खी लोग आनन्दित हो जाते हैं। याकूब उन्हें खोजते-खोजते बियाबान में पहुँचे। वहाँ तालमुद टोकरी में दाना लिए चिड़ियों को चुगा रहे थे, और चिड़ियों की प्रसन्नता भरी फुदकन और चहचहाहट देखकर आनन्द से विभोर हो रहे थे।

याकूब बहुत देर बैठे रहे, पर जब संत का ध्यान उनकी ओर नहीं गया तो झल्ला उठे। तालमुद ने इशारे से उन्हें पास बुलाया और टोकरी थमाते हुए कहा, 'लो, अब तुम चिड़ियाँ चुगाओ और इनकी प्रसन्नता को देखकर आनन्द का लाभ करो। अपना दु:ख भुलाकर दूसरों के आनन्द में जुट जाने के सिवाय आनन्दित होने का दूसरा रास्ता इस दुनिया में नहीं है।' याकूब का समाधान हो गया।

गुरु तत्त्व

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

यथार्थ में गुरु कोई शरीरधारी मनुष्य नहीं, बल्कि एक मौलिक तत्त्व हैं जिसे गुरु तत्त्व भी कहते हैं। जिस तरह पंच भौतिक तत्त्व होते हैं उसी तरह गुरु तत्त्व भी एक तत्त्व होता है। आपके भीतर अनेक सूक्ष्मतर और उच्चतर तत्त्व हैं, जिन्हें आप अभी नहीं जानते क्योंकि आप में उन तत्त्वों का बोध करने की क्षमता नहीं है।

गुरु तत्त्व भी वास्तव में आपके भीतर विराजमान है। आज्ञा चक्र वह स्थान है जहाँ यह गुरु तत्त्व अभिव्यक्त होता है। यह ज्ञान के उन्मुक्त, निर्बाध प्रवाह को दर्शाता है। आपको किताबें पढ़ने की आवश्यकता नहीं, न ही किसी विश्वविद्यालय या ग्रन्थालय में जाने की जरूरत है। ज्ञान सदैव आपके चारों ओर प्रवाहित हो रहा है। अभी आप इसे आत्मसात् नहीं कर सकते, क्योंकि आप में पर्याप्त ग्रहणशीलता नहीं है। यदि आपके भीतर गुरु तत्त्व जागृत है, तो यह ज्ञान आपको स्वत: उपलब्ध हो जाएगा। तब आप काल के तीनों आयाम—भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान जान सकेंगे। आपको इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, इत्यादि की जानकारी स्वत: प्राप्त हो जाएगी, हालाँकि यह सब बहुत ही साधारण स्तर की जानकारी है।

स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द जी को केवल पाँच मिनट में क्रिया योग की शिक्षा दी। स्वामी निरंजनानन्द कभी विद्यालय नहीं गए, परन्तु यदि आप उनसे वार्त्तालाप करें तो आपको इस बात का आभास तक नहीं होगा। इसी को हम गुरु तत्त्व कहते हैं। यह तत्त्व भौतिक नहीं है। जो भी इसे जागृत कर लेता है वह गुरु है। गुरु कोई उपाधि या प्रमाणपत्र नहीं। केवल चाहने से कोई गुरु नहीं बन जाता। नियति द्वारा नियुक्त किए जाने पर ही आप गुरु बन सकते हैं। आपके भीतर ज्ञान प्रवाहित होने लगता है क्योंकि आप भीतर से खाली हो जाते हैं। खाली होने पर ही आप उच्चतर ज्ञान के सशक्त माध्यम बन सकते हैं।

जब स्वामी सत्यानन्द जी ऋषिकेश में थे, तब वे दिनभर बैठकर वेद, उपनिषद् या गीता का पाठ नहीं किया करते थे। वे सदैव कर्मयोग में संलग्न रहते थे—सफाई करना, पानी भरना, झाड़ू लगाना, अतिथियों से मिलना वगैरह। उनके समर्पण, निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास और गुरु-सेवा की वजह से उनमें गुरु तत्त्व जागृत हुआ। यह उनकी नियति थी, जिसकी वजह से यह ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ।

कई बार लोग हमसे कहते हैं, 'हमने स्वामी सत्यानन्द जी से दीक्षा ग्रहण की है पर अब हम उनसे न मिल सकते हैं, न ही कुछ पूछ सकते हैं। तो फिर हमारे गुरु कौन हैं, स्वामी शिवानन्द या स्वामी सत्यानन्द या स्वामी निरंजनानन्द?' इस प्रकार की भ्रान्ति निराधार है क्योंकि देखा जाए तो सभी गुरु एक-दूसरे से जुड़े

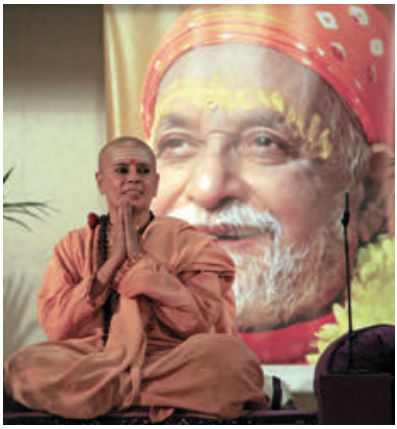

होते हैं। वे शारीरिक रूप से बेशक अलग दिखते हैं, परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर वे एक होते हैं। इस ऐक्य के कारण उनके बीच आध्यात्मिक ऊर्जा का सम्प्रेषण होता है, जिसे हम समझ नहीं सकते क्योंकि हमने कभी इसका अनुभव नहीं किया है। हम हर चीज को बुद्धि द्वारा ही समझते हैं। किसी चीज को तभी समझ पाते हैं जब उसे शब्दों के रूप में सुनते हें। लेकिन जब आध्यात्मिक शक्ति का सम्प्रेषण होता है, तब शब्दों की आवश्यकता नहीं रहती। कोई चीज हमारी ओर सम्प्रेषित होती है और हम उसे स्वत: आत्मसात् कर लेते हैं। गुरु के इस सम्प्रेषण के माध्यम से हर प्रकार का ज्ञान हमें उपलब्ध हो सकता है, चाहे वह ईसा मसीह से आये, या राम, कृष्ण अथवा स्वामी सत्यानन्द से। बस हमें उस व्यक्ति पर पूरा विश्वास होना चाहिए जिसे हमने अपना गुरु मान लिया है।

अगर विश्वास के बजाय हमारे अन्दर संशय और शंका है तो बेहतर होगा कि हम गुरु न ही बनायें। एक बार आपने किसी व्यक्ति को गुरु मान लिया तो वहाँ संशय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। गुरु एक पवित्र, अलौकिक तत्त्व है। वे मात्र एक शिक्षक नहीं बल्कि एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने चेतना की उच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जिससे वे आपके विषय में बहुत कुछ जान लेते हैं। गुरु के समक्ष जाना और उनसे कुछ पूछना आपकी अपनी आवश्यकता है। आप क्या सोच रहे हैं, इसे जानने में गुरु को कोई दिलचस्पी नहीं। अगर वे चाहें तो क्षणभर में जान सकते हैं। मान लीजिए कि आप लंदन, फ्रांस या इटली में कहीं हैं और किसी तकलीफ में हैं। आप अपने गुरु को याद कर रहे हैं, उनसे हार्दिक प्रार्थना कर रहे हैं। निश्चित रूप से गुरु आपकी प्रार्थना सुनेंगे। लेकिन आपको सदैव इस कथन पर संशय होगा और यही आपकी सबसे बड़ी समस्या है। यदि वे आपकी प्रार्थना नहीं सुन सकते तो वे कदापि गुरु नहीं हो सकते। जिस क्षण आप 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हैं, आपको यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे सब कुछ जानते हैं। इस जानकारी का माध्यम उनकी स्थूल चेतना नहीं बल्कि चेतना की वह उच्च अवस्था होती है, जो सब कुछ स्वयमेव समझ लेती है। सांसारिक चेतना से नहीं, बल्कि चेतना की उच्च अवस्था से ही गुरुजन आशीर्वाद दिया करते हैं। अपने चेतन मन से वे भले ही यह न जानें कि आप क्या सोच रहे हैं, लेकिन उनकी उच्च चेतना सब कुछ जानती, समझती और ग्रहण करती है।

नवजीवन का अवतरण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मैं विषय-सुखों के इस भ्रामक जीवन से थक चुका था।
मैं इस शरीर-रूपी बन्दीगृह से ऊब चुका था।
मैंने महात्माओं के साथ सत्संग किया,
और उनके अमृतमय उपदेशों का पालन किया।
मैंने राग-द्वेष के गहन अरण्यों का अतिक्रमण किया।
मैंने भले-बुरे जगत् से अति-दूर विचरण किया।
मैं परम मौन की सीमा तक जा पहुँचा,
और मैंने अंतरात्मा के ऐश्वर्य का दर्शन किया।
अब मेरे सारे शोक दूर हो गए हैं।
मेरा हृदय आनन्द से आप्लावित हो रहा है।
मेरी आत्मा में शांति का समावेश हुआ है।
मैं अचानक अपने जीवन से ऊपर उठ गया,
और मुझमें नवजीवन का अवतरण हुआ।
मैंने सत्य के अन्तर्जगत् का अनुभव किया।
उस अदृश्य से मेरी आत्मा परिपूर्ण हो चली।
मैंने अनंत ज्योति के प्रवाह में स्नान किया,
और 'मैं ही ज्योति हूँ' इसका साक्षात्कार किया।

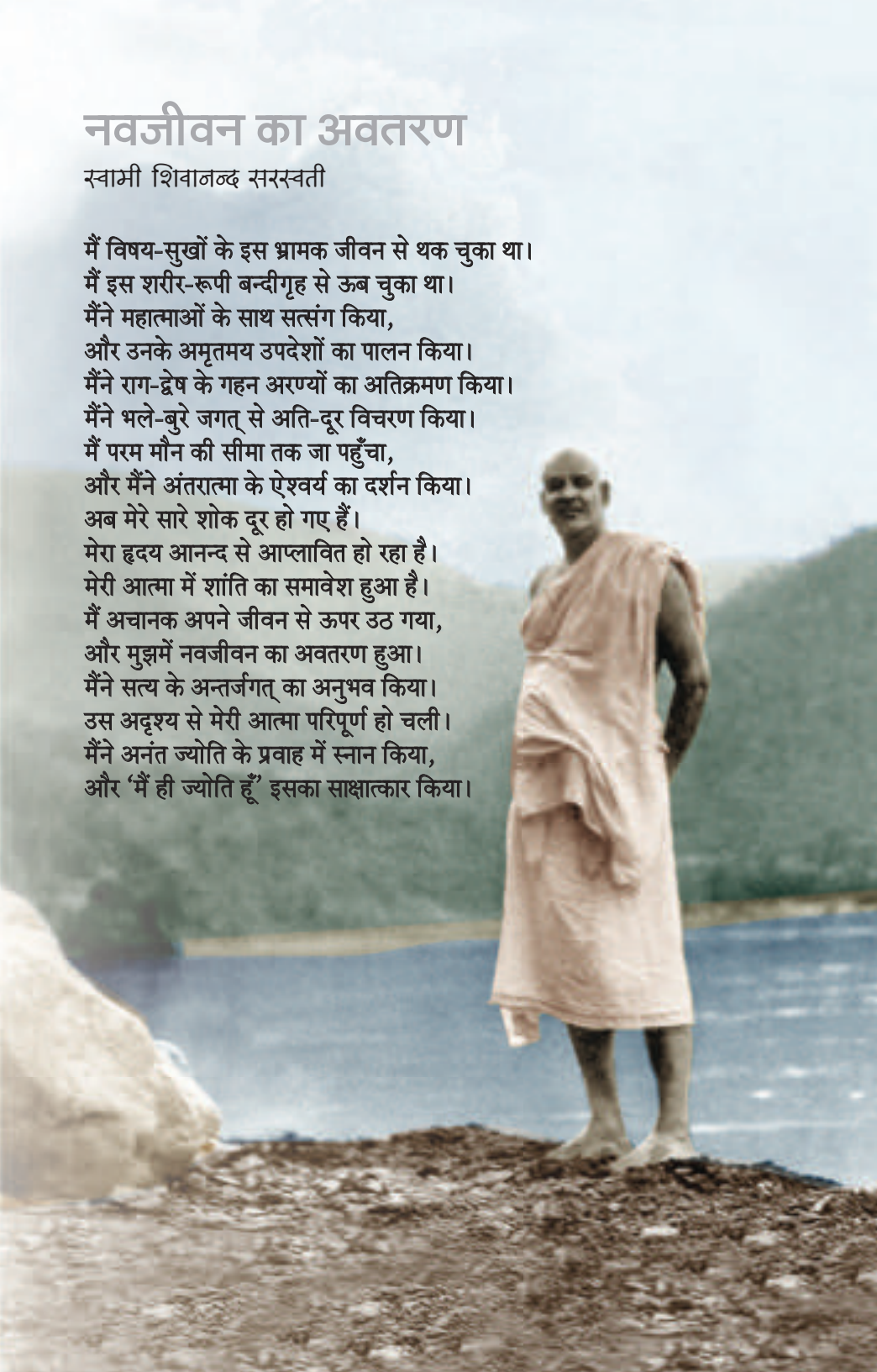

आराधना का लक्ष्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हर एक मनुष्य, वह जहाँ कहीं भी हो, हिन्दुस्तान में या हिन्दुस्तान के बाहर, उत्तरी ध्रुव में या और कहीं पर भी, भगवान को याद करता है, भगवान को मानता है। उसके अलग-अलग कारण हैं। सभी लोग प्रेम के कारण भगवान को नहीं भजते। भगवान को प्रेम से भजने वाले इक्के-दुक्के ही मिलेंगे तुमको। वे तुम्हें सड़क-गली-चौराहे पर कभी नहीं मिलेंगे।

चार प्रकार के आराधक

भगवान का भजन ज्यादातर लोग किसलिए करते हैं? भगवान को याद क्यों करते हैं? नम्बर एक, जब आदमी को कोई परेशानी होती है, जब वह आर्त्त हो जाता है, और इसकी वजह से घबरा जाता है तब भगवान को याद करता है। यह है भगत नम्बर एक। मुकदमा लग गया, अचानक आयकर का छापा पड़ गया, जवान बेटा बीमार पड़ गया या सरकारी कार्यालय में उनके काम के खिलाफ कुछ पूछताछ हो गयी, ऐसी बहुत-सी विपत्तियाँ हैं, जिनको गिनाना भी सम्भव नहीं है। विपत्ति में, कष्ट में लोग भगवान के पास माँगने जाते हैं।

दूसरे प्रकार का भक्त वह है जो भगवान से कोई ऐसी चीज माँगने जाता है जिसे प्राप्त करने में वह असमर्थ रहा है। बेटा तो सभी को चाहिए, क्योंकि बेटे के बिना

कोई कमाने वाला नहीं जिन्दगी में और मरने के बाद श्राद्ध करने वाला चाहिए। बुढ़ापे में कमायेगा, और मरने के आगे के टिकिट के लिए पैसे देगा। कई लोग नौकरी के लिए तो कई लोग अपने व्यापार में उन्नति के लिए भगवान की शरण में जाते हैं। कई लोग इम्तहान में पास होने के लिए जाते हैं। ये दूसरे प्रकार के भक्त हैं, जो मतलबिया हैं। यह मतलबिया भक्त अपना स्वार्थ चाहता है।

तीसरा जिज्ञासु भक्त होता है जो जानना चाहता है कि भगवान क्या है, आत्मा क्या है, संसार क्या है, सृष्टि क्या है? मरने के बाद क्या होता है? पुनर्जन्म कैसे होता है? ये लोग भी भगवान का भजन करते हैं। इनमें से ज्यादातर लोग घर-बार छोड़ ही देते हैं, हम जैसे। अब तो हम वह नहीं हैं। हमने अपना नाम वहाँ से कटवा लिया है।

हम इसी भक्ति को लेकर निकले थे, कहाँ से आदमी आया? कहाँ आदमी जाएगा? कैसे पैदा हुआ? सूरज क्या है? चन्द्रमा क्या है? सृष्टि क्या है? यह भक्त जिज्ञासु होता है, जानने की इच्छा रखने वाला। ऐसे भक्त भगवान का भजन करते हैं, कीर्तन करते हैं, जप-तप करते हैं, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा जानने की कोशिश करते हैं। इनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। पहली और दूसरी श्रेणी की संख्या बहुत बड़ी है। सब लोग उसी कोटि में आते हैं।

चौथा होता है प्रेमी भक्त, जैसे गोपियाँ या हनुमानजी। उनकी भगवान से ऐसी कोई मांग नहीं होती कि बेटा दे दो, दु:ख मिटा दो, सुख दे दो, हमारा मुकदमा ठीक करो, हमारा बेटा ठीक कर दो। इन सबसे उनका कोई मतलब नहीं। उनके मन में भगवान के लिए केवल प्रेम होता है, जैसे मीरा और चैतन्य महाप्रभु। मैंने सिर्फ दो उदाहरण दिये। प्रेमी भक्त के उदाहरण इक्के-दुक्के हैं, इतिहास में भूले-भटके निकल आते हैं।

ये चार प्रकार के लोग भगवान का जो भजन करते हैं, इसको कहते हैं आराधना। आराधना का मतलब होता है भगवान की पूजा करना, भगवान का नाम लेना, भगवान के पास बैठकर उनके नाम का गान करना—उपचार सहित या उपचार रहित। उपचार सहित माने घण्टी, तुलसी पत्ता, जल, शंख आदि से पूजन करना। उपचार रहित माने धूप, दीप, नैवेद्य की जरूरत नहीं, सीधा नमस्कार कर लिया। बैठ गये, रामचरितमानस पढ़ रहे हैं, भागवत पढ़ रहे हैं, हनुमान चालीसा पढ़ रहे हैं या कीर्तन कर रहे हैं। इसको कहते हैं उपचार रहित।

जब कभी तुम भगवान का स्मरण करते हो, चाहे किसी भी भावना से, चाहे विपत्ति में करो, चाहे मतलब से करो, चाहे जिज्ञासा से करो अथवा प्रेमवश करो, वह भगवान की आराधना है। एक व्यक्ति परमात्मा का आशीर्वाद चाहता है—प्रभु मेरी विपत्ति हरो, कष्ट हरो। दूसरा भगवान का वरदान चाहता है—भगवान मेरे को सम्पत्ति दो, यह दो, वह दो। तीसरा भगवान का ज्ञान चाहता है—भगवान क्या है?

और चौथा भगवान का प्रेम चाहता है। चाहते तो चारों ही हैं। ये चारों व्यक्ति अपने-अपने विषय को लेकर जब भगवान का स्मरण करते हैं, भगवान की पूजा करते हैं, उसी को आराधना माना जाता है।

नाम संकीर्तन

भगवान की आराधना अनेक प्रकार से होती है, कोई एक उपाय हो तो बतलाऊँ। पर अनेक उपायों में आराधना का सबसे उत्तम और सरल उपाय है, नाम संकीर्तन। अभिषेक करो न करो, आरती करो न करो, तुम्हारी मर्जी। मंत्र का उच्चारण करो, न करो, तुम्हारी मर्जी। फूल, पत्ता, चंदन, अक्षत चढ़ाओ, न चढ़ाओ, तुम्हारी मर्जी। किन्तु जब भगवान का नाम लेते हो, तो उसमें तुमको कुछ भी खर्च करना नहीं पड़ता। क्यों? इसलिए कि भगवान का नाम जब लिया जाता है, तब वह मुँह से निकलता है और वातावरण में छा जाता है। पूरे वायुमण्डल में छा जाता है। उससे वायुमण्डल में एक शक्ति उत्पन्न होती है, वह शक्ति का क्षेत्र बन जाता है, ऊर्जा स्थल बन जाता है। वहाँ पर जितने भी लोग आते हैं, बैठते हैं, रहते हैं, जितने भी लोगों को वहाँ से गुजरना है, उनके मन के अंदर वह शक्ति उनको स्पर्श करती है।

यह जो राम नाम की आराधना हमने यहाँ आयोजित की है, इसमें हमने केवल एक चीज रखी है, भगवान शिवजी को हम यहाँ आने के लिए विवश कर रहे हैं। यह निश्चित है, यह सही है और इस पर हर व्यक्ति को विश्वास रखना चाहिए कि

हमारे सन्त-महात्माओं ने जो कुछ कहा, उसके पीछे मतलब था। वे कपोल-कल्पित गप नहीं लगाते थे कि ऐसे ही कुछ कह दिया। महात्मा लोग गंभीर होते हैं। यह तो आप मानते हैं कि सन्त तुलसीदास गम्भीर थे, वे ऐसे ही नहीं थे। जीवन को, सृष्टि को, वेदान्त दर्शन, अद्वैत वेदान्त दर्शन, विशिष्ट अद्वैत दर्शन को उन्होंने गम्भीरता से लिया। ऐसे ही बच्चों की तरह नहीं लिया। समझाया उन्होंने। इतने गम्भीर आदमी फालतू बात कहेंगे? नहीं। शिवजी के मुँह से पार्वती जी को कहलवाया है और रामजी के मुँह से कहलवाया है। उसका यही निचोड़ है कि जहाँ राम का नाम उच्चारण होगा, जहाँ राम की पूजा होगी, जहाँ राम की आराधना होगी वहाँ शिवजी अवश्य आयेंगे। इसलिए नहीं कि वे तुमको दर्शन देने आयेंगे, बल्कि इसलिए कि वे राम नाम सुनने को आयेंगे।

भगवान से सम्बन्ध जोड़ना

जीवन में मनुष्य यदि प्रपंच की आराधना करे तो उसको प्रपंच की प्राप्ति होती है। धन, स्त्री, सम्पत्ति, सुख, भोग, ये प्रपंच हैं, इनकी प्राप्ति होती है, किन्तु ये अपने साथ दु:ख लाते हैं। जिस तरह से हर एक वस्तु अपने साथ अपनी छाया लाती है, उसी तरह प्रपंच की भी छाया होती है। पुत्र हो, स्त्री हो, धन हो, सम्पत्ति हो, नाम हो, यश हो, सम्मान हो, जो कुछ भी तुम चाहो, मिलेगा जरूर अगर आराधना करोगे तो, किन्तु अपने साथ दु:ख को जरूर लायेगा। पर जब तुम भगवान की आराधना प्रेम के वशीभूत होकर करते हो, और इस भाव को अपने मन में रखकर करते हो कि उनका एक बार मेरे को दर्शन हो जाए, उनके और मेरे बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाए, बस, फिर दु:ख की कोई बात नहीं।

भगवान की पूजा करना ठीक है और बहुत सरल है। फोटो रख लिया, धूप उठा लिया, चन्दन उठा लिया, अक्षत दिया, नम: नम: कर दिया। हनुमान चालीसा पढ़ लिया, रामरक्षा स्तोत्र पढ़ लिया, रुद्री पढ़ ली, पानी डाल दिया। बहुत सरल है, कोई भी कर सकता है। तुम नहीं करोगे तो आने वाले युग में एक रोबोट को सिखा देना, वह पूजा कर लेगा। रोबोट भी पूजा कर सकता है। टेपरिकॉर्डर लगा दो वह भजन कर लेगा। भगवान के बारे में बोलना, भगवान के बारे में सुनना, भगवान की पूजा करना, भगवान के बारे में रामायण या श्रीमद्भागवत जैसे ग्रन्थ पढ़ना, यह सब अच्छा लगता है और आसान है, परन्तु भगवान के साथ किसी प्रकार का रिश्ता जोड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि जिसने भगवान के साथ ठीक से रिश्ता जोड़ लिया, अपने रिश्ते को पहचान लिया, तो समझो कि उसे भगवान मिल गये।

भगवान के साथ अपना रिश्ता जोड़ना, अपना रिश्ता समझना और उस रिश्ते के मुताबिक अनुभव करना बड़ा कठिन है। तुम एक स्त्री के साथ रिश्ता जोड़ते हो, पुरुष के साथ रिश्ता जोड़ते हो, एक भावना का जन्म होता है। एक दोस्त के साथ

तुम रिश्ता जोड़ते हो, एक भावना का जन्म होता है। इसको कहते हैं भावना या भाव। वात्सल्य भाव बेटे के साथ, माधुर्य भाव स्त्री-पुरुष के साथ, इष्ट भाव भगवान के साथ, दास्य भाव मालिक के साथ– ये भाव होते हैं। जैसे ही तुमको अपने मन में यह ख्याल आयेगा कि मैं भगवान का दास हूँ, तुरन्त तुम्हारे मन में कैंकर्यभाव आयेगा, किंकर का, दास का भाव। कैंकर्य भाव बिल्कुल वैसा ही होता है जैसे तुम्हारे घर में तुम्हारे नौकर का होता है। तुम्हारा नौकर जो तुम्हारे बर्तन माँजता है, तुम्हारे कपड़े धोता है, तुम्हारे घर में छोटे-मोटे काम करता है, उस नौकर के मन में तुम्हारे प्रति किस प्रकार का कैंकर्य भाव है? ठीक वही भाव भक्त के मन में आता है। ऐसा नहीं कि खाली बोल दिया 'दासोऽहम् दासोऽहम्' और वह भाव नहीं आया। इसका मतलब हो गया कि यह तोता बोल रहा है राम-राम। उसमें भावना कुछ है नहीं। जब तुम चैतन्य महाप्रभु की तरह, मीरा की तरह कहते हो कि वह मेरा पति है–

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

जैसे ही तुम भगवान से कहो कि तुम मेरे पति हो, तुम्हारे मन में वही भाव उत्पन्न होना चाहिए जो एक पत्नी के मन में उत्पन्न होता है। अगर नहीं हुआ तो वही तोते वाला हिसाब। जिन्दगी भर राम-राम बोलता है और बिल्ली को देखकर टाँय-टाँय बोलता है। जो भी भावना, जो भी सम्बन्ध तुम भगवान से जोड़ना चाहते हो, जिस प्रकार का भी रिश्ता तुम भगवान के साथ रखना चाहते हो, जमाना चाहते हो, वह भावना तुम्हारे मन में उत्पन्न होनी चाहिए। केवल सोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि जैसी बड़ी-बड़ी बातें बोलने से कुछ लाभ नहीं यदि उसमें भाव न हो तो। एक तरफ बोलते हो कि तीन काल में जगत् नहीं, तीन काल माने जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में दुनिया है ही नहीं, सब मिथ्या है और इधर रसोईघर में जाते हो तो बीबी से बोलते हो दाल में नमक नहीं!

हम लोग छोटे लोग हैं, वैसे नहीं जैसे शुकदेव जी या बड़े-बड़े संत-महात्मा थे। वे ब्रह्म में लीन हो गये, लेकिन हमारी वह औकात नहीं है, हमारी वह योग्यता नहीं है, हमारी वह प्रतिभा नहीं है, हमारी वह पहुँच नहीं है। हमारी पहुँच कहाँ तक है, तुम्हारी पहुँच कहाँ तक है? पर इतनी बात पक्की है कि भगवान के साथ तुम्हारा कोई-न-कोई रिश्ता है, जिसको तुम नहीं जान पा रहे हो।

भगवान के साथ कुछ निश्चित रिश्ते होते हैं। या वे तुम्हारे पिता हैं, या वे तुम्हारी माता हैं, या तुम्हारे पुत्र हैं, या तुम्हारे सखा हैं या तुम्हारे पति हैं, या तुम्हारे परमेश्वर हैं, या तुम्हारे मालिक हैं, या तुम्हारी आत्मा हैं। बस! इतने के अन्दर खोजो। यह मत कहो कि भगवान मेरे भतीजे हैं। नहीं। भगवान के साथ तो कुछ ही रिश्ते होते हैं, इसलिए सन्तों ने पहले ही कहा है– *त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।*

भगवान के साथ जो रिश्ते होते हैं, वे कैसे होते हैं? रामजी ने हनुमान जी से पूछा, 'तुम्हारा-मेरा क्या रिश्ता है?' हनुमान जी ने कहा, 'जब तक मेरी देह बुद्धि है, तब तक मैं आपका दास हूँ।' जैसे हम हैं, आप हैं, हम सब लोग देह बुद्धि वाले हैं। हनुमान जी आगे कहते हैं, 'जब मेरी बुद्धि थोड़ी उठेगी और जीव बुद्धि हो जाएगी तो मैं आपका अंश हूँ। और जब मैं अपनी आत्मा को जान जाऊँगा, आत्म बुद्धि में चला जाऊँगा, शरीर से ऊपर उठ कर ऊँचा चला जाऊँगा, तब आप और मैं एक होंगे।'

देहबुद्ध्या तु दासोऽस्मि जीवबुद्ध्या त्वदंशकः ।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः ॥

बस, आराधना उत्सव का यही लक्ष्य है कि हम भगवान के साथ रिश्ता जोड़ें। आज से खोजना शुरू कर दें। हम ईश्वर के साथ किस प्रकार जुड़े हैं। जब तक तुम भगवान के साथ अपने रिश्ते को पहचान नहीं लेते, सब कुछ भूल जाओ। जो कुछ भी तुम कर रहे हो वह सब निरर्थक है। तुम भगवान की पूजा-अर्चना कर सकते हो, पुस्तकें पढ़ सकते हो, पूजा में सम्मिलित हो सकते हो, मंदिर जा सकते हो, अन्य पवित्र स्थलों पर जा सकते हो। यह सब कुछ ठीक है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि वह इसकी खोज करे कि भगवान के साथ उसका अभी का क्या रिश्ता है। तुम उन्हीं से जुड़े हो। यहाँ एक सम्बन्ध है, तुम्हारा भगवान से रिश्ता है, परन्तु तुम अपने भगवान के साथ उस रिश्ते को भूल गए हो।

यदि तुम कहो कि मैं और मेरे पिता दोनों एक हैं, *अहं ब्रह्मास्मि,* तो तुममें वह भावना भी होनी चाहिए, वह बोध होना चाहिए। अगर तुम कहते हो कि हम भगवान की पत्नी हैं तो तुम्हारे अन्दर वही भावना होनी चाहिए जो एक पत्नी की अपने पति के प्रति होती है। यदि तुम कहो कि मैं भगवान का सेवक हूँ, तो क्या सचमुच तुम्हारे अन्दर वैसी भावना है जैसी तुम्हारे सेवक की तुम्हारे प्रति होती है? इस राम नाम आराधना का यही उद्देश्य है कि भगवान के साथ हमारा जो सम्बन्ध है, जिसे हम किसी प्रकार भूल चुके हैं, उसकी खोज करें।

–राम नाम आराधना 1996, रिखियापीठ

अनुशासन ही योग है

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे भीतर शक्ति और प्रतिभा छिपी हुई है, पर अपने जीवन में इनका उपयोग करने के लिए सबसे पहले इन्हें जाग्रत करना होगा। लेकिन इसके पूर्व, हमारे भीतर चिन्ता और तनाव की जो परतें हैं, उन्हें हटाकर अपने व्यक्तित्व के मध्य एक ऐसे स्थान में पहुँचना होगा, जहाँ पर कर्म सकारात्मक हों, दृष्टिकोण व्यापक हो, और अशान्ति नहीं, शान्ति हो; विक्षिप्तता नहीं, मानसिक एकाग्रता हो।

तनावमुक्ति हेतु योगनिद्रा

अपने जीवन में हमलोग प्राय: देखा करते हैं कि किसी वस्तु या लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भ में उत्साह, प्रयत्न और पुरुषार्थ रहता है, लेकिन फिर एक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जहाँ पर हम अपने आपको तनाव से ग्रस्त और विक्षिप्त अनुभव करते हैं, अपने भीतर अकर्मण्यता के भाव को देखने लगते हैं, निराशा की अनुभूति हमें होने लगती है। जब इस प्रकार की परिस्थिति हमारे जीवन में आती है तब उस समय कौन-सा उपाय है जिसके द्वारा हम इस तनावपूर्ण और विक्षिप्त अवस्था को दूर करके पुन: शान्त और एकचित्त मानसिक स्थिति को प्राप्त करें? योग में इसका उपाय बताया गया है—योगनिद्रा।

योगनिद्रा के बहुत-से आयाम होते हैं। सबसे पहले आप इस बात को समझ लीजिए कि योगनिद्रा का अर्थ क्या होता है। निद्रा का अर्थ तो हम लोग जानते ही हैं। रात्रि के समय हर व्यक्ति, हर प्राणी सोता है। इस निद्रा की स्थिति में क्या होता है? शरीर विश्राम प्राप्त करता है। उसमें ऊर्जा का संचार होता है। दिन के समय जिस शक्ति का व्यय हम लोग करते हैं, उसे रात्रि के समय पुन: प्राप्त करते हैं। थकान मिटती है। मन परेशानी और चिन्ता के विषय से दूर हो पुन: अपनी खोयी हुई शक्ति को प्राप्त करता है और दूसरे दिन हम पुन: अपने सामान्य कार्य में भिड़ जाते हैं।

बहुत बार ऐसा देखने में आता है कि आठ-दस घण्टे सोने के पश्चात् भी हमारे भीतर तनाव और थकान बनी ही रहती है, इच्छा होती है कि हम कुछ घण्टे और सो जायें। मनोविज्ञान के अनुसार मन को विश्राम देने की अलग-अलग प्रक्रिया होती है। पहली शिक्षा हमें मिलनी चाहिए कि हम किसी तरीके से रात्रि के समय अपने शरीर और मन को एक ऐसी अवस्था में ले जायें जहाँ किसी प्रकार के चेतन, अवचेतन या अचेतन तनाव या विकार उत्पन्न न हों। सामान्य निद्रा में इस अवस्था का अभाव रहता है।

सामान्य निद्रा को योग की भाषा में भोगनिद्रा कहते हैं, और जहाँ पर पूर्ण विश्राम की अनुभूति हो, उसे कहते हैं योगनिद्रा। योगनिद्रा और भोगनिद्रा में यह भेद है, क्योंकि जब आप रात को बिस्तर में सोने के लिए जाते हैं तो कभी अकेले नहीं रहते, पूरा संसार आपके विचारों में व्याप्त रहता है। घरेलू समस्याएँ, बच्चों की चिन्ता, अपने व्यवसाय या कार्यालय की चिन्ता रहती है। इन सब परेशानियों को लेकर आप सोने के लिए जाते हैं, इसलिए कभी अकेले तो रहते नहीं। अकेले सोना सीखना पड़ेगा। बाह्य परिस्थितियों एवं विचारों से यह सम्बन्ध-विच्छेद करना आवश्यक है। जब तक इस प्रकार का सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता तब तक मनुष्य विश्राम प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए योगनिद्रा में शनैः-शनैः अपने मन को स्थूल से सूक्ष्म अनुभवों में स्थापित करते हैं। जब स्थूल अनुभवों के क्षेत्र से हमारा मन गुजरता है तब शरीर तथा उसके विभिन्न अंगों में व्याप्त तनाव को हम जानने लगते हैं, शरीर की विभिन्न अवस्थाओं को समझने लगते हैं। मन के भीतर उत्पन्न होते विचारों को रोक कर, मन की क्रियाशीलता को एक दिशा प्रदान करते हैं कि भाई, तुम अब इस केन्द्र में अपने ध्यान को एकाग्र करो, इस प्रकार के विचारों को लाओ, इस प्रकार की कल्पना करो। मन को निर्देश दिये जाते हैं कि तुम यह कार्य करो।

जब मन को सकारात्मक निर्देश दिया जाता है तब उसकी चंचलता समाप्त होती है। अगर घोड़े पर हम लोग सवारी करते हैं तो उसे निर्देश देते हैं न? दौड़ो, चलो, दाहिनी तरफ मुड़ो, बायीं तरफ मुड़ो। अगर घोड़े को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये तो वह अपनी मनमर्जी करेगा। मन भी जंगली घोड़े की तरह मनमर्जी करता

है, और उस पर किसी का नियन्त्रण नहीं रहता। लेकिन जब हम मन को एक दिशा देने लगते हैं, उसके भीतर एक विचार उत्पन्न करने लगते हैं, उसे निर्देश देते हैं कि तुम इस प्रकार के अनुभव को जाग्रत करो, तब यह संयत होने लगता है। यही योगनिद्रा का सिद्धान्त है।

संयम और अनुशासन

जब मन संयत होता है तब तनाव और चिन्ता की जो परतें हमारे भीतर छायी हुई हैं, उन्हें दूर करने के पश्चात् अंतश्चेतना में गोता लगाकर, आंतरिक प्रतिभा विकसित होती है। तब दुनिया में कोई ऐसा ज्ञान नहीं, जिसे हम प्राप्त नहीं कर सकते; कोई ऐसा काम नहीं, जिसे हम सफलतापूर्वक पूर्ण नहीं कर सकते।

हर प्रकार की शक्ति, हर प्रकार की क्षमता हमारे भीतर है, केवल हम उसे जान नहीं पाते, क्योंकि अभी हमारा जीवन अनुशासित और संयत नहीं है। अभी हमारे जीवन में अराजकता, अनुशासनहीनता और तनाव हैं। इन्हीं तीनों के कारण जो अव्यवस्था उत्पन्न होती है, उसके कारण आज हम अपने जीवन से पीड़ित और दु:खी रहते हैं। कभी किसी रोग के कारण दु:खी रहते हैं, तो कभी किसी मानसिक समस्या के कारण। कभी अपने ही जीवन का अवलोकन करते समय दु:ख का अनुभव करने लगते हैं कि मैंने जो चाहा, वह पाया नहीं।

जीवन में अनुशासनहीनता तथा अव्यवस्था के कारण ही सभी प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसीलिए योग एक स्पष्ट विचारधारा को लेकर चलता है। अपने जीवन में एक अनुशासन को लागू करना ही योग है। जीवन में जब इस अनुशासन को लागू किया जाता है तब संयम और आत्म-नियन्त्रण की जो स्थिति प्राप्त होती है, उसे चित्तवृत्ति-निरोध कहते हैं।

योग–मन का विज्ञान

वर्तमान युग के संदर्भ में योग की भूमिका अत्यन्त गहन एवं विशाल है, इसलिए आप इस बात को अच्छी तरह से समझ लीजिए कि योग क्या है, क्योंकि आजकल योग के नाम पर अनेक प्रकार के अभ्यासों को सिखाया-समझाया जाता है, और लोगों की कुछ ऐसी विचारधारा हो गयी है कि योग को मात्र शारीरिक व्यायाम मानते हैं। लेकिन हम लोगों का अनुभव रहा है कि योग सर्वश्रेष्ठ मनोविज्ञान तथा आत्म-विज्ञान है, क्योंकि जीवन में सभी प्रकार के कर्मों, इच्छाओं, वासनाओं एवं पुरुषार्थों की शुरुआत तथा करुणा, दया, प्रेम, ईर्ष्या, राग, द्वेष इत्यादि भावनाओं की उत्पत्ति मन से ही होती है। जब तक मन को ठीक नहीं किया जाता, जब तक स्वयं को एकाग्रचित्त होने का तरीका नहीं सिखाया जाता, तब तक मन इस प्रकार के अंकुर, पौधे, वृक्ष और फल उत्पन्न करता ही रहेगा। कभी हम राग का फल

खाते हैं तो कभी द्वेष का। कभी सकारात्मक विचारों को जन्म लेते देखते हैं तो कभी नकारात्मक विचार प्रबल हो हमारे जीवन को झकझोर देते हैं। इस सबका मूल केन्द्र है मन।

योग को मनोविज्ञान तथा आत्मविज्ञान इसीलिए कहा गया है कि इसका लक्ष्य मन को नियंत्रित रखना है। जब यह मन अपने नियंत्रण में आ जाए, तब व्यवहार, आचरण, विचारधारा, दृष्टिकोण तथा कर्म बदलते हैं। अभी हमारे जीवन में आत्म-शक्ति, संकल्प-शक्ति और क्रिया-शक्ति की जो कमी है, वह दूर हो जाती है। हम वास्तव में मानवीय-मूल्यों से परिपूर्ण जीवन बिताने लगते हैं।

योग के विभिन्न आयाम

जब हम मानवीय-मूल्यों से परिपूर्ण जीवन बिताने लगते हैं तब योग मनोविज्ञान से आत्मविज्ञान में परिणत हो जाता है। इसके अनेक द्वार हैं। एक है हठ योग का, दूसरा है राज योग का, तीसरा है भक्ति योग का, चौथा है ज्ञान योग का। चुनाव कर लीजिए कि हमें किस दरवाजे से अपने अन्दर प्रवेश करना है।

हमलोगों का जीवन क्षेत्र अनंत और विशाल है। हम लोग इसकी बाहरी सीमा पर ही चक्कर काटते रहते हैं, और वहीं हमारी जिन्दगी बीत जाती है। लेकिन जिस दिन एक दरवाजे के द्वारा हम अपने जीवन के केन्द्र में जाने का प्रयत्न करेंगे, उस दिन से हमारे जीवन में परिवर्तन शुरू होगा। हर व्यक्ति अपनी विचारधारा, व्यक्तित्व तथा गुण के अनुरूप एक मार्ग का चुनाव करता है। अगर कोई व्यक्ति शारीरिक रोग से पीड़ित है तो व्याधि एक माध्यम बन जाती है उसके द्वारा योग को अपनाए जाने की। कोई व्यक्ति अगर मानसिक रूप से अशान्त है तो वह अशान्ति ही योग में प्रवेश पाने का माध्यम बन जाती है। इतना तो निश्चित है कि जब तक हम अपने जीवन की विषम परिस्थितियों से थप्पड़ नहीं खाते, तब तक हमारे विचार नहीं बदलते।

जब हम दु:ख या क्लेश का सामना करते हैं, जब हमारी दुनिया उलट-पलट जाती है तब स्वयं को असहाय महसूस करते हुए हम किसी उदात्त चीज की ओर आकृष्ट होते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है भगवद्गीता। गीता के प्रथम अध्याय का नाम है 'विषाद योग' और दूसरे अध्याय का नाम है 'सांख्य योग'। अब देखिए, कहाँ विषाद और कहाँ सांख्य! जिस प्रकार से हनुमान जी ने समुद्र पार किया था, उसी प्रकार से यहाँ पर भगवान कृष्ण ने विषाद से सांख्य में आकर बीच के समुद्र को पार किया है। सांख्य एक दर्शन, विचारधारा और सिद्धान्त है। अर्जुन के जीवन में जो विषाद हो रहा था, उसे दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने सांख्य का सहारा क्यों लिया? वे अर्जुन से सीधी बात कह सकते थे कि तुम फालतू की चिन्ता कर रहे हो। सीधे ग्यारहवें अध्याय में पहुँच जाते, अपना विराट् रूप दिखा देते कि देखो, मैं ही सब कुछ हूँ, अत: तुम युद्ध करो। इतनी लम्बी-चौड़ी गीता की क्या आवश्यकता थी?

अठारह अध्यायों के उपदेश की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि विषाद या दु:ख के पीछे एक रहस्य, एक कारण होता है। विषाद का एक केन्द्र होता है, और वह केन्द्र हमारे मन के भीतर है। उसे जानने और समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम कदम-दर-कदम चलकर स्वयं को, स्वयं के व्यक्तित्व, क्षमताओं एवं कमियों को समझें, और समझ कर अपने विचारों को, अपने जीवन को बदलने का प्रयास करें।

हर व्यक्ति के जीवन में सामर्थ्य है, इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन हर व्यक्ति के जीवन में कमी भी है। हमलोग अपनी कमी को स्वयं से छिपाकर जिस सामर्थ्य को अभी जान नहीं सके हैं, उसे जानने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु परिवर्तन को लाने के लिए यह आवश्यक होता है कि हम अपने जीवन के प्रत्येक स्तर को ज्ञान-चक्षु से देखें। यह ज्ञान-चक्षु किसी दिव्य-चक्षु या सर्वज्ञता का लक्षण नहीं है, बल्कि विवेकपूर्ण और व्यावहारिक दृष्टिकोण है, जिसके द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि हम अपने जीवन को और अधिक पूर्ण बनायें, क्योंकि यही शिक्षा हमारे मनीषियों ने हमें दी है। यही शिक्षा हमारे दर्शनों में भरी पड़ी है। हम लोग अपनी प्रार्थना में भी इसी शिक्षा को दोहराते हैं। ईशावास्य उपनिषद् का शान्ति मन्त्र है–

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

इसका क्या अर्थ होता है? रामचरितमानस में पढ़ते हैं, 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' ये हैं छोटे-छोटे वाक्य, लेकिन इनका अर्थ गूढ़ है। इनका सम्बन्ध हमारे व्यक्तिगत जीवन से है, हम यह समझते भी हैं, लेकिन अपने जीवन में उतार नहीं पाते। उतारें कैसे? गाड़ी को चलायें कैसे? इंजन में चाबी लगी है, लेकिन चालू करना नहीं आता, हैण्ड ब्रेक छोड़ना नहीं आता, गियर बदलना नहीं आता।

इसलिए योग जीवन को एक शिक्षा-क्षेत्र के रूप में देखता है। योग कहता है कि तुम कभी पूर्ण जीवन नहीं जीते हो, और पूर्ण जीवन न जीने के कारण ही दु:ख, क्लेश, व्याधि, तनाव और जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहते हो। जिस दिन

पूर्ण जीवन जीना सीखोगे, जो तुम्हारे लिए सकारात्मक तथा परिवार, समाज एवं विश्व के लिए कल्याणप्रद सिद्ध हो, उस दिन मान लेना कि जीवन में सार्थकता और पूर्णता का अनुभव किया है।

महर्षि पतंजलि से जब पूछा गया कि योग क्या है, तो उन्होंने एक ही सूत्र में इसका जवाब दिया, *'अथ योगानुशासनम्।'* योग एक अनुशासन है। उन्होंने यह नहीं कहा कि योग शरीर-विज्ञान है या भक्तियोग ही योग है। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि योग ईश्वर को प्राप्त करने का एक माध्यम है। एक ही शब्द का प्रयोग किया उन्होंने, अनुशासन। वह अनुशासन जो स्थूल-से-स्थूल और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हो, जिसके द्वारा हमारा जीवन संयत हो, उसे योग कहते हैं। फिर उनसे पूछा गया कि अनुशासन को प्राप्त करने के बाद क्या होगा। तो उन्होंने एक सूत्र में ही इसका जवाब दिया, *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'* योग-अनुशासन के द्वारा तुम अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध कर पाओगे। यहाँ विरोध शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। अपने चित्त का विरोध नहीं करना है। अवरोध शब्द का प्रयोग भी नहीं हुआ है। अपने चित्त की जो वृत्तियाँ हैं, उन्हें अवरुद्ध भी नहीं करना है। उनका निरोध करना है। यह निरोध ही अनुशासन का परिणाम है। फिर जब उनसे पूछा गया कि इस निरोध से क्या प्राप्ति होती है, तब उन्होंने जवाब दिया, *'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'* —तब मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

यह आत्मस्वरूप क्या है? आत्मस्वरूप कोई दार्शनिक विचारधारा नहीं है, यह जीवन रूपी सितार के सभी तारों को मिलाकर बजाने का सिद्धान्त है। रथ में अनेकों घोड़े जुते हैं, लेकिन वे सभी लगाम के द्वारा एक ही हाथ से नियन्त्रित होते हैं। जीवन की सभी अवस्थाओं एवं अनुभवों में जब संयम की लगाम लगी रहे, और इन लगामों का नियन्त्रक मानव, जाग्रत और विवेकपूर्ण होकर जब पूर्ण सजगता के साथ आत्म-विकास के पथ पर चलने लगे, तब उसे कहते हैं आत्मस्वरूप में स्थित मनुष्य। ऐसे ही मनुष्य को भगवान कृष्ण ने संयमी मनुष्य का नाम दिया है, योगी की उपमा प्रदान की है। वे कहते हैं—हे अर्जुन! वही मनुष्य योगी है जो अपने मन की प्रतिक्रियाओं पर संयम की लगाम लगा कर, जीवन को अपने नियन्त्रण में रख कर चले। ऐसा ही मनुष्य मुझे प्रिय है।

संक्षेप में यही योग है। इस योग की अवस्था तक पहुँचने के लिए आप अपने व्यक्तित्व, विचार और आवश्यकता के अनुसार जिस किसी मार्ग का चयन करें, चाहे वह हठयोग का मार्ग हो या राज योग का या अन्य किसी योग का, वही आपको जीवन में सफलता प्रदान करने में सक्षम है। एक योग दूसरे से श्रेष्ठ नहीं है। योग की किसी एक प्रक्रिया में प्रवीणता पर ही विशेष ध्यान देना चाहिए, तभी हम जीवन की वर्तमान तनावपूर्ण स्थिति तथा मानसिक एवं शारीरिक संतापों का निराकरण कर पायेंगे, अन्यथा नहीं।

बँधनों से ऊपर उठो

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

नाम बदलेगा, अजपा बदलेगा,
सुरति बदलेगी, निरति बदलेगी,
इस रहस्य को पहचानो।
माया मन का भाव है,
माया विचारों का रूप धरकर आती है
और साधक का उत्साह भंग करती है।
अत: साधना की पकड़
किसी भी हालत में नहीं छोड़ना,
मन अच्छे-बुरे सुझाव देता रहेगा।
योग की शक्ति तुममें है
जो साधना से प्रकट होगी।
साधना भर करना तुम्हारा काम।
सत्य का स्वरूप एक भी और अनेक भी
अपनी दृष्टि बदलो, विचार बदलो
स्वमानित सुख-दु:ख के बंधनों से ऊपर उठो,
क्योंकि जीवात्मा इन सबसे अछूता और परे है।

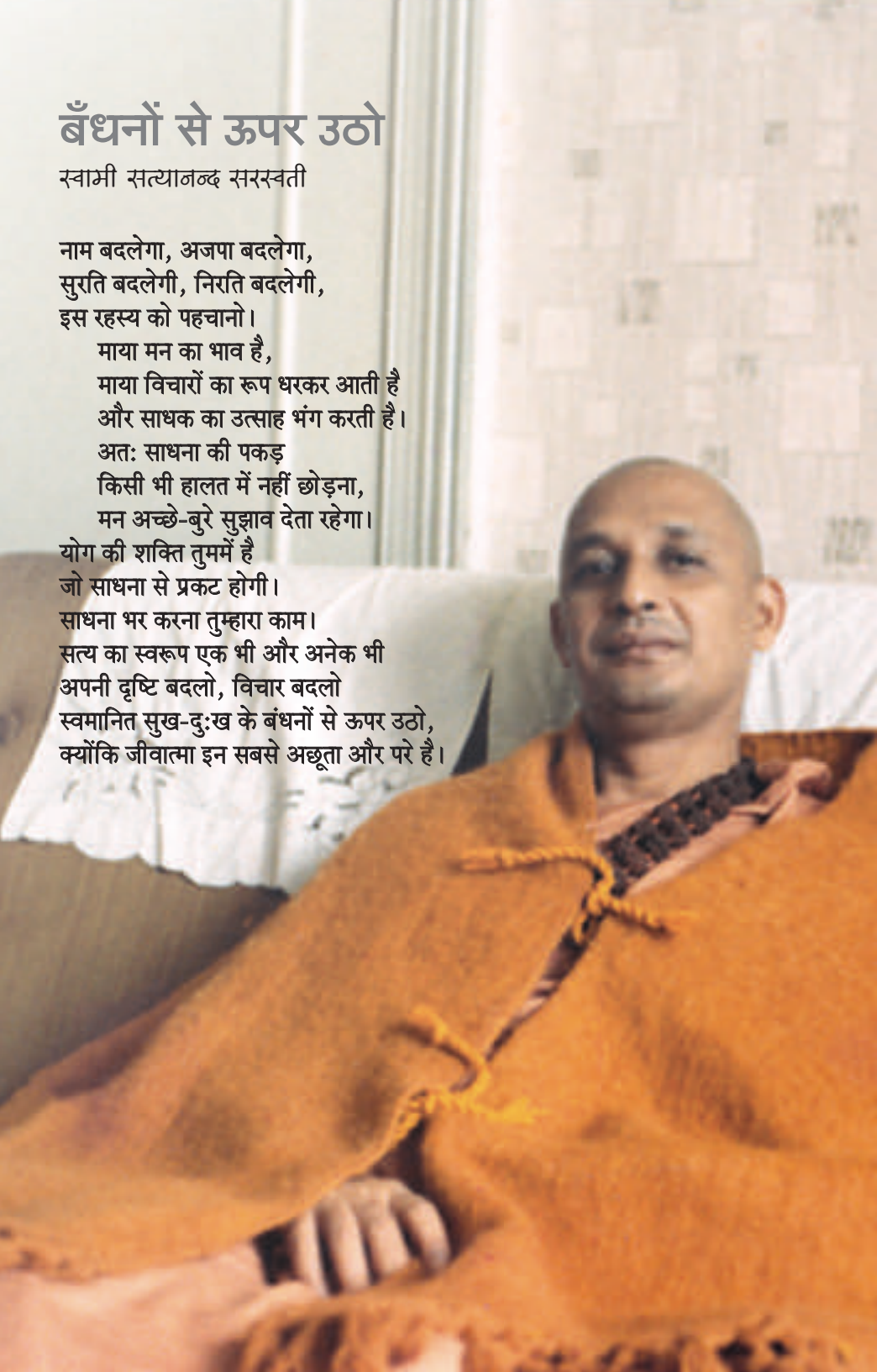

गीता का सनातन संदेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गीता महाराज धृतराष्ट्र के इस प्रश्न से आरम्भ होती है कि धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया? संजय युद्धभूमि का वर्णन आरम्भ करते हैं। वे कहते हैं कि दोनों सेनाएँ आमने-सामने हैं। एक सेना के सेनापति भीष्म हैं और उनके अधीन कौरव-पक्ष के सभी राजा और उनकी सेनाएँ हैं। दूसरे पक्ष के सेनापति भीम हैं और उनको सहयोग करने वाले पाण्डव-पक्ष के राजा हैं।

इस बीच अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आप मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दीजिए ताकि मैं दोनों पक्षों को भलि-भाँति देख सकूँ। जब श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा करते हैं, तब वहाँ पर अर्जुन दोनों सेनाओं में अपने चाचा-मामा, दादा-परदादा, गुरुजन, भाई-बन्धु, पुत्र-पौत्र, मित्र, श्वसुर और सुहृद् को देखता है। उन लोगों को वहाँ देखकर अर्जुन को अचानक सदमा पहुँचता है कि मेरे ही स्वजन सामने खड़े हैं और मुझे इन्हीं के साथ युद्ध करना है। इस विचार से वह शोकग्रस्त हो जाता है। उसके शरीर से पसीना छूटने लगता है और हाथों से आयुध गिर जाते हैं। वह श्रीकृष्ण से कहता है, 'जिनके लिए हमें राज्य, भोग और सुख अभीष्ट हैं, वे ही सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर, युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं! हम धृतराष्ट्र के पुत्रों, अपने बांधवों को मारने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी हो पाएँगे? हम लोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करने को तैयार हैं। राज्य और सुख के लोभ से स्वजनों को मारने के लिए हम तैयार हो गये हैं। क्या इन्हें मारकर हम कभी सुख प्राप्त करेंगे?' वह आगे कहता है कि मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करुँ, मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। आप ही मुझे सही मार्ग, सही दिशा बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए?

गीता के पहले अध्याय में अर्जुन के इसी विषाद को समझाया गया है। मनुष्य के जीवन में विषाद कब होता है? जब मनुष्य अपनी वासनाओं के अधीन रहकर अपने कर्त्तव्यों को भूल जाता है और अपनी इच्छापूर्ति के लिए न्याय एवं धर्म का त्याग करके कर्म करता है।

स्वार्थ का संसार

संसार में जब व्यक्ति का जन्म होता है, तब माया उस व्यक्ति की मालिक हो जाती है। ईश्वर मालिक नहीं रहता। माया सर्वशक्तिमान् है और वह हर व्यक्ति को

कठपुतली की भाँति नचाती है। माया के अधीन अपनी जीवनचर्या व्यतीत करते हुए जीव ईश्वर भक्ति का प्रयास करते हैं।

जब आत्मा एक शरीर को धारण करती है, तब शरीरस्थ आत्मा को हम लोग कहते हैं जीव। यही शरीरस्थ आत्मा अर्थात् जीव, संसार में जन्म लेता है, पढ़ाई करता है, काम करता है, पैसा कमाता है, परिवार की वृद्धि करता है, नाम और यश कमाता है और अंत में *हरि ॐ तत्सत्* हो जाता है।

जब तक जीव जीवन के इस क्रम में कर्म करता है, तब तक उसके कर्म स्वार्थ-वृत्ति से प्रेरित होते हैं। स्वार्थ-वृत्ति से प्रेरित कर्म का मतलब हुआ, अपने हित, अपने सुख, अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए किया गया कर्म। हम स्वयं अपने कर्मों के केंद्र बन जाते हैं। यह बात याद रखना कि इच्छा हमेशा सकाम होती है। निष्काम इच्छा को जबरदस्ती लाने का प्रयास किया जाता है, लेकिन इच्छा का स्वाभाविक रूप हमेशा सकाम होता है। इस प्रकार इस संसार में आने के पश्चात् सब मनुष्यों के कर्म, आचरण, व्यवहार—सब स्वार्थ-पूर्ति से प्रेरित होते हैं। चाहे वह आपका जीवन हो या संतों का, चाहे पाण्डवों का हो या कौरवों का, स्वार्थ से कोई मुक्त नहीं है। अगर एक साधु को भी रोटी की इच्छा होती है तो वह अपने लिए इच्छा कर रहा है। वहाँ पर भी स्वार्थ आ जाता है।

इस स्वार्थ के अनेक रूप होते हैं। स्वार्थ का एक रूप अपने शरीर का पालन-पोषण करना होता है। स्वार्थ का दूसरा रूप अपनी प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा को बढ़ाने का प्रयास होता है। तीसरा रूप घर-परिवार-सम्पत्ति की वृद्धि होता है, ताकि वंश

परम्परा कायम रह सके। स्वार्थ का चौथा रूप जीवन में सुख की खोज करना होता है। इस प्रकार हमारे शास्त्रो में स्वार्थ के अलग-अलग रूपों को समझाया गया है।

स्वार्थ की उत्पत्ति कब होती है? जब व्यक्ति किसी विषय के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। अगर व्यक्ति का विषय के साथ सम्बन्ध न हो, तो इच्छा उत्पन्न नहीं होगी, स्वार्थ-वृत्ति जन्म नहीं लेगी। लेकिन अगर एक इच्छा है और उस इच्छा की पूर्ति के लिए हम प्रयास कर रहे हैं, तो इच्छा के साथ स्वार्थ भी साथ चलता है। स्वार्थ का विकास कब होता है? सम्बन्धों के कारण। जब हम इस संसार में आते हैं, तब हमारे साथ मन और इंद्रियाँ भी आते हैं। ये दोनों मिलकर आत्मा की अभिव्यक्ति का कारण बनते हैं।

आगे चलकर श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि मेरा ही अविनाशी अंश पृथ्वी पर इन्द्रियों और मन के साथ अवतरित होता है। इन्द्रियाँ तथा मन इस जीव को संसार में बाँधते हैं। जब इंद्रिय और मन जीव को संसार में बाँधते हैं, तब जीव स्वतंत्र नहीं रहता। वह संसार के विषयो में ही लिप्त हो जाता है। अगर इंद्रिय और मन जीव को नहीं बाँधें तो निश्चित रूप से उसे प्रेरणा होती है कि मैं ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करूँ, ईश्वर का दर्शन करूँ, ईश्वर से मेरा सम्बन्ध जुड़े। लेकिन ऐसा नहीं होता है। हम लोग ईश्वर का चिन्तन जरूर करते हैं, लेकिन उसे जीवन की प्राथमिकता नहीं समझते। हमारी प्राथमिकता संसार में सुखपूर्वक, शांतिपूर्वक और समृद्धिपूर्वक जीने की हो जाती है। इसलिए जीवन का व्यवहार हमें ईश्वर की ओर नहीं ले जाता, बल्कि हमें संसार में और अधिक प्रवेश दिलाता है।

जैसे-जैसे हम संसार में प्रवेश करते हैं, वैसे-वैसे हमारी बुद्धि, मन और इंद्रियाँ विषयाकार हो जाते हैं। जब मन विषयों का रूप ग्रहण कर लेता है, तब फिर उस मन में सुख-शांति कहाँ? बल्कि उस मन में चंचलता, अशांति, संघर्ष और उनकी परिणति दु:ख के रूप में दिखलाई देती है और यह हर व्यक्ति के जीवन की कहानी है।

आसक्ति से अशांति

इस संसार में आकर हम जो सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उसमें एक सीमा निश्चित कर लेते हैं कि यह मैं हूँ, ये मेरे हैं, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे बच्चे हैं, ये मेरे सास-ससुर हैं, ये मेरे चाचा-मामा हैं, ये मेरे मित्र हैं। इस प्रकार हम इस प्रकृति में जन्म लेकर पुन: अपने चारों तरफ एक समाज का निर्माण करते हैं जिसके साथ हमारा एक भावनात्मक सम्बन्ध हो जाता है। यही भावनात्मक सम्बन्ध आसक्ति का कारण बनता है। आसक्ति का कारण बुद्धि नहीं, भावना है। बुद्धि तो आप इधर-से-उधर कर सकते हो, लेकिन भावनाओं को इधर-से-उधर करना मुश्किल हो जाता है। अगर एक बार भावना किसी के साथ जुड़ जाती है, तो फिर

भावना उसी आकार को ग्रहण कर लेती है। इस तरह हमारी भावना ही समाज और संसार से आसक्ति का कारण बनती है।

अर्जुन के साथ भी यही घटना घटी। वह अपने ही स्वजनों को सामने देखता है, जिनको देखकर वह शोकग्रस्त होता है। अगर अर्जुन के सामने कोई दूसरा राजा युद्ध करने के लिए आता, तो अर्जुन शोकग्रस्त नहीं होता, क्योंकि वह राजा पराया है। लेकिन जब अपनों को सामने देखता है तब शोक होता है। यहीं से गीता की शिक्षा आरम्भ होती है।

जब हम मोह, ममता और अपनत्व के कारण अपनी मति की स्पष्टता खो देते हैं, और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित क्या है, यह भूल जाते हैं, तब उस समय अशांति छा जाती है और अर्जुन की यही हालत है। जब वह देखता है कि युद्ध के लिए मेरे ही लोग सामने खड़े हैं, तब वह प्रश्न करता है कि इनको मारकर हम कैसे सुखी होंगे। यहाँ अर्जुन एक और विशेष बात कहता है। हम सब लोग बुद्धिमान् हैं। बुद्धिमान् का मतलब न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म के बारे में जानने वाले। लेकिन बुद्धिमान् हो करके भी हम महान् पाप करने को तैयार हो गए हैं। महान् पाप क्या है? एक-दूसरे को मारना। हमारे शास्त्रों में हत्या, प्राणों को हर लेना, सबसे बड़ा पाप माना गया है। थप्पड़ मारना कोई बड़ी चीज नहीं है, लेकिन गला काटने का अधिकार किसी को नहीं है और हम लोग वही पाप करने को तैयार हो गए हैं।

अर्जुन कहता है कि बुद्धिमान् हो करके भी हम यह महान् पाप करने को तैयार हैं और इस पाप को करके हम कैसे सुखी बन सकते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इस अवस्था में उसके शरीर में कम्पन होने लगता है। उसके शरीर की शक्ति, सामर्थ्य, ऊर्जा, बल, सब समाप्त हो जाता है। उसके अस्त्र-शस्त्र गिर जाते हैं और वह चुपचाप मूढ़ अवस्था में रथ में बैठ जाता है।

अनित्य-नित्य का विवेक

अर्जुन की विषादग्रस्त दशा देखकर श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! तू शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिए शोक करता है और पण्डितों के जैसे वचन कहता है। परन्तु जिनके प्राण चले गए हैं, उनके लिए, और जिनके प्राण नहीं गए हैं, उनके लिए भी पण्डित लोग शोक नहीं करते।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता: ॥2.11॥

श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन को समझा रहे हैं कि तुम शोक आखिर किसलिए कर रहे हो, क्योंकि संसार में जो कुछ भी है, वह अनित्य है, और अनित्य के लिए

शोक करना बेवकूफी है। प्रकृति की हर वस्तु की एक समाप्ति तिथि होती है। आप बाजार जाकर कोई दवाई खरीदते हो, तो उसके पीछे लिखा होता है कि इसका उपयोग कब तक कर सकते हैं। जब आप अपने व्यापार में हर वस्तु पर एक लेबल लगा देते हो कि इस तिथि के पश्चात् इसका उपयोग नहीं करना, तब भगवान भी, जिसने इतनी बड़ी सृष्टि का निर्माण किया है, क्या बिना लेबल लगाए हमलोगों को भेज देंगे? भगवान ने भी लेबल लगा दिया है कि तुम इस तारीख के आगे जी नहीं सकते, यह तुम्हारी 'एक्सपायरी डेट' है।

जब संसार में हर वस्तु की समाप्ति तिथि निश्चित है, तो किसके लिए शोक करना? खराब दवाई फेंक दो, दूसरी दवाई ले लो। मृत शरीर के स्थान पर दूसरा शरीर ले लो। बुढ़ापे में न खाना खा सकते हो, न देख सकते हो, न चल सकते हो, तो भी जीना चाहते हो। एक्सपायरी के बावजूद भी अपने आप को जीवित रखना चाहते हो। आदमी अंतिम क्षण तक अपनी एक्सपायरी डेट को बढ़ाना चाहता है। अगर अस्सी साल का है तो कहेगा, भगवान की कृपा हो जाए तो नब्बे-सौ का हो जाऊँ। आदमी कुछ नहीं कर पाता, बिस्तर में ही पड़ा हुआ है, लेकिन फिर भी जीने की तमन्ना है।

भगवान यहाँ पर इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि इस सृष्टि में जिस भी वस्तु का निर्माण हुआ है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, सबका एक-न-एक दिन नाश होगा। जिस चीज का नाश होने वाला है, उसके लिए शोक करने से कोई फायदा नहीं। यहाँ पर तुम जिन लोगों को युद्ध के लिये तैयार खड़ा देख रहे हो, उन्होंने एक निश्चित दिन इस संसार में जन्म लिया और एक निश्चित दिन यहाँ से जाने वाले भी हैं। हो सकता है कि वह दिन आज हो या अस्सी साल के बाद। जो भी हो, अर्जुन, तुम्हें अनित्य के लिए शोक करना शोभा नहीं देता।

संसार में प्राय: यही होता है। हर व्यक्ति अनित्य के लिए शोक करता है। एक बार एक बूढ़े व्यक्ति हमारे पास आए। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी बहुत दु:खी हूँ।' हमने पूछा, 'क्या हुआ?' तो उन्होंने कहा, 'मैंने जीवनभर नौकरी की, इस इच्छा के साथ कि अंत में एक मकान बनाऊँगा। मैंने धन-संग्रह करके एक मकान बनाया लेकिन एक महीने के अंदर ही उस मकान में आग लग गई। मेरा सब कुछ नष्ट हो गया है।'

हम चुपचाप उनकी बातों को सुनते रहे। वे केवल अपना दु:ख व्यक्त करना चाह रहे थे। उनकी बातों को सुनकर जो थोड़ा बहुत सांत्वना-सहारा दे सकते थे, वह दिया। उनको समझाया कि आपने मकान ही खोया है, अपना जीवन, पुरुषार्थ या प्रतिभा नहीं। अपने पुरुषार्थ और प्रतिभा के बल पर आप फिर से धन कमाकर मकान बना सकते हैं। लेकिन वे साठ साल के बुजुर्ग हमारे इस विचार को ग्रहण नहीं कर पा रहे थे। बातचीत समाप्त हो गई।

हम दोनों टहलते हुए गेट से बाहर निकले। गेट के बाहर कुछ बच्चे खेल रहे थे। एक बच्चे के हाथ में प्लास्टिक की गाड़ी थी। दूसरे बच्चे ने उसको जमीन पर पटककर तोड़ दिया। पहला बच्चा प्लास्टिक की गाड़ी हाथ में रखकर रोने लगा कि मेरी गाड़ी टूट गई। हमारे साथ जो व्यक्ति थे, वे उस बच्चे के पास जाकर कहते हैं कि बेटा रोओ मत, तुम्हारे लिए दूसरी गाड़ी खरीद लेंगे। उसी समय हमने उनसे कहा, 'आप एक बच्चे को तो सलाह दे रहे हैं कि रोओ मत, दूसरी गाड़ी खरीद लेंगे। वही सलाह आप स्वयं को क्यों नहीं देते कि रोओ मत, दूसरा मकान खड़ा कर लेंगे।'

वे हमें नमस्कार करके चले गए। डेढ़ साल के बाद वे वापस आकर हमसे कहते हैं, 'स्वामीजी! मुझे उस दिन जो शिक्षा मिली थी, उससे मैं पुन: अपने आवास का निर्माण कर पाया हूँ।' हमने उनसे कहा, 'वह शिक्षा हमने नहीं, बल्कि वह आपने स्वयं को दी थी। जब आपने उस बच्चे को कहा कि रोओ मत, टूटी गाड़ी फेंक दो, दूसरी ले लो, और आपने वही सिद्धांत जब अपने ऊपर लागू किया, तब डेढ़ साल के बाद आप दुबारा अपना घर बनाकर यहाँ आ सके हो।'

नित्य आत्मा, अनित्य शरीर

श्रीकृष्ण बार-बार अर्जुन से कहते हैं कि तुम अपने कर्त्तव्य पर ध्यान दो। तुम एक योद्धा हो, अपने कर्त्तव्य को मत भूलो। अनित्य के लिए शोक मत करो, नित्य को जानने का प्रयास करो। नित्य किसको कहते हैं? गीता के दूसरे अध्याय में कहा गया है–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय: ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥2.20॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस संसार में अगर कुछ नित्य है, तो वह है आत्मा। शरीर, घर-परिवार, समाज, सम्बन्ध–सब अनित्य हैं, लेकिन आत्मा नित्य है, सनातन है। व्यक्ति बाल्यावस्था से युवावस्था को, युवावस्था से वृद्धावस्था को, और वृद्धावस्था से मृत्यु को प्राप्त करता है। लेकिन आत्मा में कभी परिवर्तन नहीं होता। शरीर, समाज और संसार में परिर्वतन होता है, लेकिन जो तत्त्व हमेशा तुम्हारे साथ है, और जिसे इस संसार में तुम बार-बार लेकर आ-जा सकते हो, वह नित्य तत्त्व आत्मा है। यह आत्मा न तो कभी जन्मती है और न ही कभी मरती है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी इसका नाश नहीं होता। अगर तुम अपना सम्बन्ध इस आत्मा से जोड़ लोगे तो शोक नहीं होगा।

जब तुम अपनी चेतना को शरीर और संसार में केन्द्रित कर देते हो तब शोक होता है। लेकिन जब तुम अपनी मन-बुद्धि को आत्मा के साथ जोड़ते हो, तब

शोक, दु:ख और विषाद से मुक्त रहते हो। इसलिए अपनी आत्मा को जानने का प्रयास करो और संसार में रहते हुए, जो भी तुम्हारे धर्म-न्याय आधारित कर्त्तव्य हैं, उन्हें करते जाओ। आत्मा को सनातन मानो और शरीर को अनित्य। तुमने अपने शरीर, घर-परिवार, धन-व्यवसाय आदि के प्रति जो अपनत्व की भावना जोड़ रखी है, वही भावना तुम्हारी बुद्धि को भ्रमित करती है। लेकिन ईश्वर की सजगता, परमात्मा की सजगता बुद्धि को स्थिर करती है। जीवन का यह लक्ष्य होना चाहिए कि अपने मन को ईश्वर के साथ जोड़ दो और संसार में रहकर कर्मों को कर्त्तव्य रूप में करते जाओ।

कर्त्तव्य-कर्म और समत्व

जहाँ तक कर्म की बात है, यह सृष्टि कर्म-आधारित है। इस सृष्टि में कर्म के बिना कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। एक त्यागी भी कर्म करता है, एक साधु भी कर्म करता है। उनका शरीर, उनका मन, उनकी भावना कर्म करते हैं। लेकिन अंतर इतना ही है कि एक त्यागी, ज्ञानी या साधु के कर्म सत्त्वगुण से प्रेरित होते हैं जबकि सांसारिक व्यक्तियों के कर्म तमोगुण और रजोगुण से प्रेरित होते हैं। रजोगुण और तमोगुण से प्रेरित कर्म मनुष्य को बंधन में डालते हैं। मनुष्य कर्म के फल की आशा रखता है। लेकिन सत्त्वगुण से युक्त हर कर्म कर्त्तव्य एवं धर्म के

रूप में सम्पन्न होता है। वह स्वार्थ द्वारा प्रेरित नहीं होता, और इसलिए वह कर्म मुक्ति का कारण बनता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से आगे कहते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥2.47॥
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥2.48॥

हे अर्जुन, तुम इस संसार में आए हो, अतः कर्म करो, नपुंसकता को प्राप्त मत करो। अपने मन को परमात्मा में लगाओ और न्याय-संगत, धर्म-संगत कर्म करते जाओ। तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए कर्मों के फल का हेतु मत बनो, साथ ही अकर्मण्यता से भी दूर रहो। आसक्ति का त्याग कर, सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि रखकर, योग में स्थित होकर कर्त्तव्य कर्मों को करो। इसी अवस्था को समत्व कहते हैं।

जो कुछ भी कर्म किया जाए, उसके फल में समभाव धारण करने का नाम समत्व है। इस बात पर विशेष ध्यान देना क्योंकि जीवन का असली सूत्र यहीं पर है। तुम्हारे द्वारा अच्छा या बुरा जो भी कर्म किया जाए, उसके पूरे होने या न होने में, और उसके फल में अगर समभाव रहे तो वह समत्व की अवस्था है। कर्म चाहे पूरा हो या न हो, चाहे उसका फल मिले या न मिले, एक शांत मन से निर्देशित कर्म को करते जाओ। यह समत्व की अवस्था है। जब तुम कर्म में फल की आशा रखते हो, तब फिर वहाँ पर समत्व की भावना नहीं रहती। फल नहीं मिलने पर दुःख, और फल मिलने पर प्रसन्नता होती है। तुम्हारा मन कभी हर्ष की ओर, तो कभी विषाद की ओर जाता है।

इसलिए अपने आप को ईश्वर से जोड़ दो, धर्म-निर्देशित-कर्म को कर्त्तव्य के रूप में करो। उस कर्त्तव्य-कर्म से कुछ अपेक्षा मत रखो। इस प्रकार जब तुम फल की आशा त्याग कर कर्म को भली-भाँति करोगे, तब तुम्हारी बुद्धि स्थिर हो जाएगी। श्रीकृष्ण अर्जुन से आगे कहते हैं–

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥2.53॥

भाँति-भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि, जब परमात्मा में अचल और स्थिर रूप से ठहर जाएगी, तब तू योग को प्राप्त हो जाएगा। योग को प्राप्त होने का मतलब, परमात्मा के साथ तेरा नित्य संयोग हो जाएगा।

–15 फरवरी 2012, शिवालय, मुंगेर

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

तत्त्व शुद्धि

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

पृष्ठ 136, ISBN: 978-93-81620-72-4

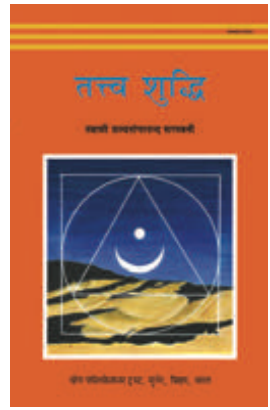

नया प्रकाशन

तत्त्व शुद्धि अन्त:करण के शुद्धिकरण की एक तांत्रिक पद्धति है। प्रत्येक व्यक्ति पाँच आधारभूत तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच आधारभूत तत्त्वों का शुद्धिकरण एवं रूपान्तरण तत्त्व शुद्धि की प्रक्रिया के द्वारा किया जा सकता है। इस सारगर्भित पुस्तक में पंच तत्त्वों के सैद्धान्तिक पक्ष, अभ्यास के विस्तृत विवरण के साथ-साथ तंत्र के तीन आधारभूत अंग–यंत्र, मंत्र और मण्डल का भी समावेश किया गया है। तत्त्व शुद्धि एक उच्च अभ्यास पद्धति है, जिसे स्वयं एक साधना के रूप में या कुण्डलिनी क्रिया तथा अन्य उच्चतर योगों के सहायक अभ्यासों के रूप में किया जा सकता है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर तथा Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में उपलब्ध
मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ ऑनलाइन प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org
मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, *ए.पी.एम.बी.* अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है।
- *बिहार योग एप्प* साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019

अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1, 2 (अंग्रेजी)
नवम्बर 7- जनवरी 25	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 11-17	क्रिया योग यात्रा 3
दिसम्बर 18-22	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net **कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं**
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।